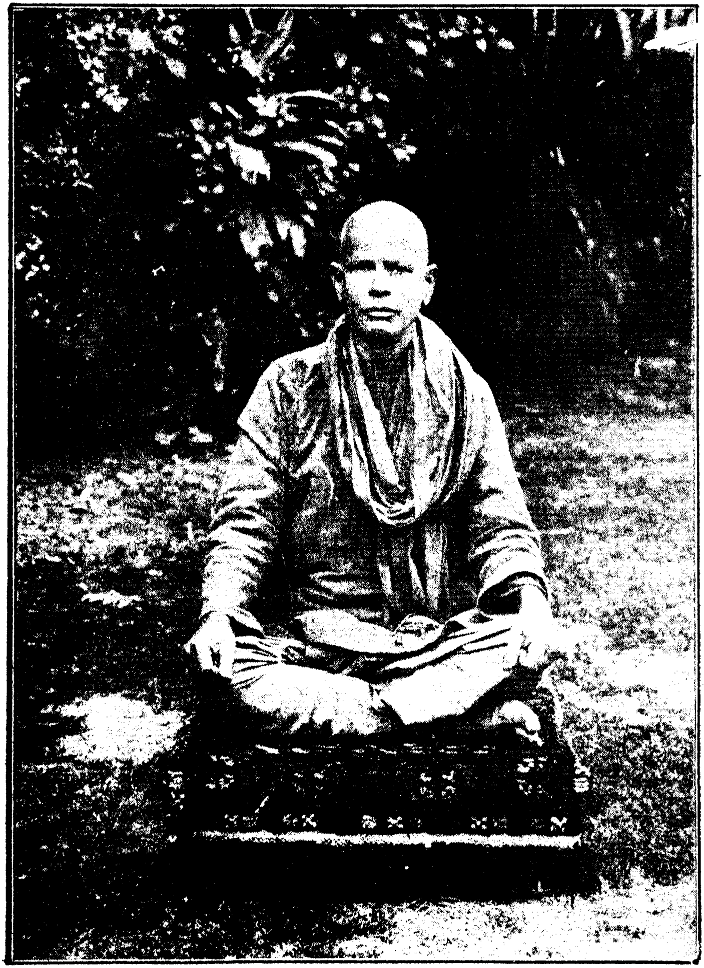
फल उनके गुण तथा उपयोग



महात्मा नारायण स्वामीजी

आर्य-समाज के स्तम्भ, गुरुकुल वृन्दावन के प्राण
अनुपम त्यागी, प्रसिद्ध वक्ता और फलाहार
के जबर्दस्त समर्थक

महात्मा नारायण स्वामी

के कर-कमलों

में

श्रद्धापूर्वक समर्पित

केशवकुमार ठाकुर

विषय-सूची

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

भूमिका

छात्र-हितकारी पुस्तक-माला के संचालक महोदय से, जिस समय इस पुस्तक के लिखने की आज्ञा मिली थी, वह समय मेरे लिए शान्त-जीवन का था, हाल में ही मैंने गार्हस्थ्य विषय पर एक पुस्तक लिख कर समाप्त की थी, इसलिए कुछ विश्राम करके, इस पुस्तक के लिखने का विचार किया।

पुस्तक की सहायता के लिये, मैं पुस्तकालयों, बड़ी-बड़ी दूकानों में भटकने लगा, किन्तु कहीं कुछ न मिला। कई एक डाक्टरों और वैद्यों से बातें कीं, कुछ आयुर्वेदिक ग्रन्थों और डाक्टरी की पुस्तकों के सम्बन्ध में, बातें मालूम हुईं, परन्तु साथ ही यह भी मालूम हुआ कि अँगरेज़ी में भी, इसके सम्बन्ध में कोई एक पुस्तक पूर्ण नहीं है। कुछ बातें और विशेषकर फलों के गुण डाक्टरी की पुस्तकों में मिलेंगे, जिनसे एक डाक्टर ही लाभ उठा सकता है। मैं स्वयं कोई डाक्टर नहीं था, बड़ी कठिनाई जान पड़ने लगी। माला के व्यवस्थापक श्री गणेश पाण्डेय तो बड़े उद्यमशील व्यक्ति हैं, उन्होंने इसके लिए मुझे अनेक मार्ग बताए और उन्होंने स्वयं संग्रह करके मुझे कुछ पुस्तकें दीं। हिन्दी तथा अन्य किसी प्रान्तिक भाषा में इसके सम्बन्ध में मौलिक कोई ग्रंथ था ही नहीं। मुझे अँगरेजी और संस्कृत की कुछ पुस्तकें मिलीं। अँगरेज़ी और बँगला में कुछ लेख भी ऐसे मिले, जिनको मैंने उपयोगी समझा।

इसपर भी हमारे पाण्डेय जी को संतोष न हुआ। पुस्तक के सम्बन्ध में, कितनी और कौन-कौन सी बातें, कहाँ और कैसे

मालूम हो सकती हैं, इसके लिए, उन्होंने रात-रातभर सोचना और भिन्न-भिन्न लोगों से पता लगाना आरम्भ कर दिया। उनके खोजे हुए पतों पर दौड़ना मेरा काम था। फिर क्या था, फलों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने तथा उसके लिए सहायक ग्रन्थों को खोजने के लिए, आज यदि मुझे बनस्पति-शास्त्र के अनुभवी किसी अमेरिकन प्रोफ़ेसर के पास जाना पड़ा है, तो कल एग्रीकल्चर कालेज के प्रिन्सपल से मिलना निश्चित है ! और परसों के लिए पाण्डेयजी ने कुछ बुकस्टाल्स के पते मेरे लिए ढूँढ़कर रख छोड़े !!

श्रीयुत पाण्डेयजी के इस उदार परिश्रम के लिए मैं अभिारी हूँ, किन्तु इस दौड़-धूप से जो लाभ होना चाहिए था, न हुआ। पुस्तक के कुछ अंशों को पूर्ण करने के लिए, कहीं कुछ आधार न मिला है। इसका कुछ और भी कारण है और वह यह कि इस प्रकार की पुस्तक लिखने के लिए वर्षों के खोज की आवश्यकता होती है। इस नाते से यह पुस्तक जल्दी लिखी गई। इस प्रकार की पुस्तकों में साहित्यिक रचना नहीं होती, केवल खोज और अनुसन्धान की बातें होती हैं। पुस्तक लेखक इस प्रकार की बातों में, अधिकतर क्या भूलें करते हैं, उसपर प्रकाश डालते हुए एक अनुभवी अँग्रेज़ ने जो मुझसे बातें की, उनका मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने बताया कि जो नियम और उपनियम, किसी बात के लिए योरप में निश्चित् किये गये हैं, वे केवल योरप के लिए होते हैं, किन्तु उन्हीं बातों पर लिखने के लिए भारतवर्ष के हिन्दी या बँगला के लेखक, उन्हीं नियमों का उल्लेख करके पुस्तकों के पन्ने भर देते हैं, ऐसा करने से प्राय: बड़ी भूलें हो जाती हैं। किसी एक वृक्ष को लगाने के लिए योरप में कुछ बातें निश्चित की गईं, उनको हमने मालूम किया और उन्हीं के आधार पर इस देश में, उस पौदे को लगाया।

दो-चार दिनों में वह पौधा सूख गया! कारण स्पष्ट है। वे नियम जिस मिट्टी, वायु, जल और मौसिक के आधार पर निश्चित किये गये थे, वह तो यहाँ सब के सब उलटे हैं, फिर वे नियम कैसे चल सकते हैं! न तो वह यहाँ पर मिट्टी है, न वह जल है और न वह वायु है, फिर वह नियम क्या कर सकता है? बात यह है कि सारी बातें अनुभव और परीक्षा पर निर्भर हैं!

इसी आधार पर, फलों के गुणों के सम्बन्ध में, बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी है। वैद्यक, यूनानी और डाक्टरी के भिन्नभिन्न मतों को लेकर, एक-एक फल पर पर्याप्त रूप से लिखा गया है। इससे कहीं-कहीं पर, एक ही फल पर मत वैषम्य हो गया है, इस विषमता को दूर करने के लिए मेरे पास कोई साधन न था।

साधारणतया पाठक इस विषय से अनभिज्ञ होते हैं, उनको किसी प्रकार की असावधानी न हो, इसके लिए खूब प्रयत्न किया गया है, फिर भी जो त्रुटियाँ हैं, उनके सम्बन्ध में अपने अनुभवी पाठकों, उदार लेखकों और समालोचकों से आशा है कि वे उनके सम्बन्ध में लेखक और प्रकाशक को अपरिचित न रहने देंगे और उनके परिचित कराने पर, पुस्तक के दूसरे संस्करण में उनकी पूर्ति भी कर दी जायगी!

पुस्तक के विषय के प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि वे इस को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक, एक बार ध्यानपूर्वक अवश्य पढ़ जाँय। इसके बाद भी, यदि उनके मनोभावों पर, आहार और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में, सात्विक जीवन का कोई प्रभाव न पड़े तो उन्हें समझ लेना चाहिये कि पुस्तक के विषय के भावों को ठीक-ठीक प्रदर्शन करने में लेखक असमर्थ रहा।

विनीत—

केशवकुमार ठाकुर

कृतज्ञता-ज्ञापन

पुस्तक लिखने में, अपने अनुभव और विचारों के साथ-साथ, जिन पुस्तकों से सहायता ली है अथवा जिनके देखने की आवश्यकता पड़ी है, उनकी तालिका नीचे दी जाती है। जिन महानुभावों ने पुस्तकें देकर अथवा, अपने अनुभव बताकर सहायता की है, उनकी उदारता के लिए, हृदय से आभार !

पुस्तकों के नाम

१—मि० ए० ई० पावल की आहार-विषयक पुस्तक

२—द्रव्य-गुण (बँगला पुस्तक)

३—Guide to health (महात्मा गाँधी की पुस्तक)

४—The new science of healing में फलों के सम्बन्ध में मि० लुई कुह्नी के विचार

५—Fruit diet (एक डाक्टर की लिखी हुई अँगरेज़ी पुस्तक)

६—शालिग्राम निघंटु (प्रस्तुत विषय पर संस्कृत का सब से बड़ा ग्रंथ)

७—पुस्तानुल्मुफ़र्रिदात (प्रस्तुत विषय पर यूनानी की पुस्तक)

८—श्री शंकरदास जी शास्त्री पदे का 'आर्यभिषक्'

९—फलों के सम्बन्ध में अँगरेजी और बँगलों के कुछ लेख

—लेखक

फल, उनके गुण तथा उपयोग

पहला अध्याय

जीवन-शक्ति

रेलगाड़ी को छोटे और बड़े-सभी जानते हैं, यदि उसके सम्बन्ध में प्रश्न किया जाय कि रेलगाड़ी की शक्ति क्या है ? तो प्रायः सभी लोग संदिग्ध हो उठेंगे ! वे सोचने लगेंगे, रेलगाड़ी की शक्ति क्या हो सकती है । यदि इस प्रश्न के स्थान पर पूछा जाय कि रेलगाड़ी क्या खाती है । तो सभी लोग कह उठेंगे कि कोयला और पानी । अब प्रश्न यह है कि यदि उसको कोयला और पानी न दिया जाय तो ? सभी लोग कहेंगे, तो वह फिर चल न सकेगी । इस प्रकार, रेलगाड़ी की शक्ति क्या है, इस प्रश्न का उत्तर निकला, उसका भोजन कोयला और पानी । यदि उसका भोजन उसको न दिया जाय तो रेलगाड़ी में न तो शक्ति है और न उसमें कोई पुरुषार्थ है ! उसका भोजन ही उसकी शक्ति है—उसकी ख़ुराक़ ही उसका पुरुषार्थ है ! ठीक यही अवस्था हमारे जीवन की है ।

हममें से प्रत्येक व्यक्ति भोजन करता है, छोटे और बड़े—सभी को अपनी अवस्था के अनुकूल भोजन की आवश्यकता होती है । जिस दिन बालक पैदा होता है, पैदा होने के साथ ही

उसको भूख की व्यथा होती है। जो कुछ वह खाता है, उसी से उसमें चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि हमारी जीवन-शक्ति हमारा भोजन है। परन्तु वह भोजन क्या है, इस बात के जानने की आवश्यकता है। रेलगाड़ी को खाने के लिए कोयला और पानी दिया जाता है, किन्तु यह प्रश्न यहीं हल नहीं हो जाता। वह कोयला कौन-सा हो सकता है, यह जानने की आवश्यकता होती है। कोई भी कोयला, उसको आवश्यकरूप में शक्ति और सहायता नहीं पहुँचा सकता। और इसी लिए प्रत्येक कोयला उसमें प्रयोग नहीं किया जाता। इस बात को सभी जानते हैं कि रेलगाड़ी के इञ्जन में पत्थर का कोयला लगता है, यदि उसमें, इसके स्थान पर साधारण और असाधारण लकड़ी का कोयला प्रयोग किया जाय तो इञ्जन, रेलगाड़ी के संचालन में अनेक व्याधियों का अनुभव करेगा। यही अवस्था हमारे जीवन की भी है। हमको भोजन की आवश्यकता तो है ही, परन्तु हमारे लिये क्या भोजन हो सकता है—हमारी खुराक़ क्या है, यह एक अलग प्रश्न है! यह प्रश्न इतना साधारण नहीं है जितना लोग समझ लेते हैं और न इतना अनावश्यक है जितना प्रायः लोग अनुभव करते हैं।

हमारे जीवन का सारा सुख और दुःख, हमारे शरीर के स्वास्थ्य और पुरुषार्थ पर निर्भर है। जो जितना ही स्वस्थ और पुरुषार्थी है, उतना ही वह सुखी और सन्तुष्ट है। रुपया-पैसा, धन-दौलत, आदि संसार की समस्त विभूतियाँ अस्वस्थ और पुरुषार्थ हीन को सुखी नहीं बना सकतीं। इसलिए इस विषय का जानना और उसकी विवेचना करना जितना आवश्यक है उतना आवश्यक और कोई भी विवेचन नहीं हो सकता। हमारा भोजन क्या है, इसके सम्बन्ध में, आगे चलकर, स्वतन्त्र रूप से विवेचन किया जायगा, किन्तु यहाँ पर केवल यह बता देना

बहुत आवश्यक है कि समाज में इस प्रकार के मनुष्य बहुत कम मिलेंगे जिनको अपने भोजन का यथोचित ज्ञान हो।

समाज की इस अवस्था का कारण क्या है? यह प्रश्न हमारे सामने है और बहुत आवश्यक है। प्रकृति ने संसार के समस्त प्राणियों को इस प्रकार का ज्ञान प्रदान किया है जिससे किसी भी प्राणी को अपने भोजन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी से शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती। यह सब होने पर भी मनुष्य को यह जानने की आवश्यकता है कि हमारा वास्तविक भोजन क्या है। सभी लोग यह पढ़कर विस्मित होंगे कि जिस ज्ञान की आवश्यकता संसार में किसी भी प्राणी को नहीं है, उसको आवश्यकता मनुष्य जाति को क्यों है? उनका ऐसा सोचना आश्चर्यजनक नहीं है। इसलिए कि जो ऐसा सोचेंगे वे तो यही जानते हैं कि मनुष्य तो समस्त प्राणियों की अपेक्षा ज्ञान सम्पन्न है फिर उसको किसी बात के जानने की आवश्यकता क्या है और विशेषकर, उन बातों के लिए, जिनको सभी प्राणी, स्वभावतः जानते और जिनके सम्बन्ध की जानकारी रखते हैं।

यह सब ठीक होते हुए भी बात कुछ और है। जिन बातों का ज्ञान प्रकृति ने स्वभावतः समस्त प्राणियों को प्रदान किया है, उनसे मनुष्य जाति किसी प्रकार वंचित नहीं रखी गई किन्तु मनुष्य-जाति ने स्वयं अपने आपको उन जानकारियों से वंचित कर रखा है! यह सुनकर किसी को आश्चर्य न करना चाहिए, मनुष्य वंचित हुआ है, सभ्यता के प्रमाद में! अप्राकृतिक उन्माद में! यह प्रमाद और उन्माद क्या है, यहाँ पर इसके सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक है।

मानव समाज की सभ्यता का विकास, प्रकृति के विरुद्ध हुआ है, इस बात को संसार के प्रायः सभी महान पुरुष स्वी-

कार करते हैं, किन्तु इसके सम्बन्ध में हमें यहाँ पर किसी प्रकार की विवेचना नहीं करनी है। और यदि करें तो वह यहाँ पर अप्रासंगिक होगी। बताना केवल यह है कि उस अप्राकृतिक सभ्यता के विकास में, मनुष्य अपगे नैसर्गिक गुणों को भी भूल बैठा है, यह किसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता! प्राणिविज्ञान-विशारदों ने भिन्नभिन्न प्राणियों के सम्बन्ध में जो अनुभव किया है, उनका कहना है कि सृष्टि के सभी प्राणियों को अपने जीवन की आवश्यक बातों का स्वभावतः ज्ञान होता है। जिस प्राणि का जो भोजन होता है, वह उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को नहीं खाता और सूँघ कर छोड़ देता है। प्राणि-विज्ञान ने यह साबित किया है कि सभी प्राणियों की सभी बातें--उनका खाना-पीना, जीवन का व्यवहार बर्ताव, रहन-सहन, एक-सा नहीं होता। किसी एक प्राणि का जो आहार हो सकता है, दूसरा प्राणी उससे भिन्न पाया जाता है, यह विभिन्नता बहुत विस्तार के रूप में पायी जाती है, आश्चर्य की बात तो यह है कि सभी को अपनी-अपनी इन बातों का यथोचित्त ज्ञान होता है। प्रकृति ने इन प्राणियों की नाक में घ्राणशक्ति की एक विशेषता प्रदान की है जिसके द्वारा वे सभी अपना-अपना भोजन-पदार्थ पहचान लेते हैं। जो पदार्थ उनके खाने के नहीं होते उनको वे केवल सूँघकर छोड़ देते हैं। इस प्रकार की बातें, भिन्न-भिन्न प्राणियों के जीवन का थोड़ा-सा भी अध्ययन करने से जानी जा सकती हैं।

संसार में खाने के क्या-क्या पदार्थ हो सकते हैं और वे कितने हो सकते हैं, यह बताना असम्भव है। मिट्टी, लकड़ी, फल, पत्ती, माँस, मदिरा, दूध, घी, आदि संसार में जितने भी पदार्थ देखने में आ सकते हैं, वे सभी किसी न किसी प्राणी के भोजन में प्रयोग किये जाते हैं। इनमें से किसी के सम्बन्ध

में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह उत्तम है, वह खराब है, वह शक्ति-वर्द्धक है और वह हानिकार है। वास्तव में जो जिसका भोज्य पदार्थ है वह उसी के लिए हितकर शक्ति-वर्द्धक और लाभकारक है। निरर्थक पदार्थों में सब से अधिक मिट्टी ही मानी जा सकती है किन्तु वह मिट्टी कितने ही प्राणियों और जीवों का भोज्य पदार्थ है और उसी से उनको जीवन प्राप्त होता है। घृत अमृत पदार्थों में गिना जाता है किन्तु उसकी गंध मात्र से कितने ही जीवों की मृत्यु होती है। इसीलिए कोई एक पदार्थ, सभी के लिए उत्तम और सभी के लिए खराब नहीं हो सकता है।

यहाँ पर बताना यह था कि अपने नैसर्गिक गुणों के भूल जाने के कारण, मनुष्य-जाति अपने भोजनों की व्यवस्था को भी भुला बैठी है। यह ऊपर बताया जा चुका है कि इस प्रकार का ज्ञान प्रकृति ने स्वभावतः सब को प्रदान किया है। उन समस्त नैसर्गिक गुणों के मानव जाति से अन्तर्हित हो जाने का कारण यह है कि मनुष्य, अपने जीवन में विकास की ओर आगे बढ़ रहा है, वह जो कुछ जानता है उसी पर उसे सन्तोष नहीं है। जो शक्तियां उसमें विद्यमान हैं, उन्हीं को वह अपने लिए पर्याप्त नहीं समझता। इन बातों को लेकर उसने अपने जीवन में इतना उलट-पलट कर डाला है जिससे वह प्राकृतिक जीवन से बहुत दूर हो गया है और अनेक बातों में उसने अपने नैसर्गिक गुणों और पुरुषार्थों को खो दिया है विषयान्तर हो जाने के डर से, अधिक विस्तार में न जाकर यदि भोजन के सम्बन्ध में ही विचार किया जाय तो इन बातों का स्पष्टीकरण हो जाता है। माँस-मदिरा से मनुष्य को स्वाभाविक अरुचि और घृणा होती है। जिन परिवारों में माँस खाया जाता है, उन परिवारों के बालक-बालिकाएँ और स्त्रियाँ असामान्य रूप से उसका विरोध

करती हैं और अपनी घृणा का असाधारण परिचय देती हैं। इन अरुचि और घृणा रखने वालों में से ही कुछ आगे चल कर इन घृण्य वस्तुओं का उपयोग करना सीखते हैं। जो पदार्थ जिन प्राणियों के भोजन होते हैं, प्रत्येक अवस्था में उनको, उनके खाने का ज्ञान होता है। किसी भी प्राणी के छोटे-छोटे बच्चों के आगे जब वे पदार्थ डाल दिए जाते हैं जिनको वे खा सकते हैं, तो वे तुरन्त खा जाते हैं और जब उनको भोज्य पदार्थों के विरुद्ध कोई चीज़ खाने को दी जाती है, तो वे उसको सूँघकर छोड़ देते हैं, ये बातें पशुओं, पक्षियों, जानवरों और भिन्न-भिन्न प्राणियों में असाधारण रूप से पायी जाती हैं। मनुष्य जिन पदार्थों के खाने का स्वाभाविक अभ्यासी नहीं होता, वे पदार्थ वास्तव में उसके लिए भोजन नहीं होते, परन्तु वह उनके खाने का अभ्यासी बनता है। इसका परिणाम, वही होता है जो कुछ होना चाहिये। इन बातों के पुष्टिकरण में एक बात का स्मरण दिलाना आवश्यक जान पड़ता है। समाज में छोटे और बड़े, नीच और ऊँच—सभी लोग सुनते हैं, अनुभव करते हैं और जानते हैं कि उनके पूर्वज शारीरिक शक्ति और स्वास्थ्य में उनसे बहुत आगे थे और यही बात वे पूर्वज भी अपने पूर्वजों के सम्बन्ध में समझते और जानते थे। समाज की इस धारणा का यह अर्थ है कि मनुष्य का शारीरिक स्वास्थ्य और पुरुषार्थ उत्तरोत्तर नष्ट हो रहा है और इस अभाव का गम्भीर सम्पर्क हमारी सभ्यता से है। जितना ही हम प्राकृतिक जीवन के औचित्य से दूर होते जाते हैं, उतना ही हम में स्वास्थ्य और पुरुषार्थ का अभाव होता जाता है।

ऊपर यह बताया जा चुका है कि हमको भोजन की आवश्यकता है, भोजन ही हमारी जीवन-शक्ति है. भोजन ही हमारा बल है और वही हमारा पुरुषार्थ है, यदि हमें भोजन न मिले

तो हम किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकते। इसी प्रकार हमको यह भी जानने की ज़रूरत है कि हमारा भोजन वास्तव में क्या है। भोजन का प्रश्न प्रत्येक प्राणी के लिए इतना साधारण और व्यापक है कि उसके सम्बन्ध में उसको कोई बात अज्ञेय नहीं मालूम होती। वास्तव में अज्ञेय होना भी न चाहिए, और इसीलिए साधारणतया कोई भी व्यक्ति इसके सम्बन्ध की बातें जानने के लिए कुतूहल नहीं हुआ करता। किन्तु मनुष्य जीवन-पथ से इतना विपथ हो चुका है, जिसकी कोई सीमा नहीं है। इसीलिए उसको इन बातों को विशेष रूप से जानने की आवश्यकता है।

इस विषय पर संसार के विभिन्न देशीय विद्वानों ने समय-समय पर बहुत कुछ विचार किया है और समाज की वर्तमान अवस्था पर बहुत असन्तोष अनुभव किया है। इस दुरवस्था को मिटाने के लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया है। मनुष्य-जाति का वास्तविक आहार क्या है, इसके सम्बन्ध में एक-एक बात पर यहाँ भली-भाँति विवेचन किया जायगा।

इस शीर्षक की पंक्तियों में केवल यह बताना था कि हमें अपनी जीवन-शक्ति के लिए भोजन की आवश्यकता है और हमारा भोजन क्या है, यह सब जानने की आवश्यकता है। इसके आगे चल कर जो विवेचना को जायगी, वह इस विषय के एक-एक अंग को पृथक-पृथक स्पष्ट करेगी। इस प्रकार का यथावत् ज्ञान होने पर ही हम अपनी जीवन-शक्ति की यथेष्ट रूप में रक्षा कर सकेंगे, अन्यथा रोग-शोकपूर्ण संसार का कटु अनुभव लेकर एक दिन असमय यहाँ से बिदा हो जाना पड़ेगा। जीवन का सुख तो जीवन को भली भाँति समझ सकने पर ही मिल सकता है।

—❀-:-❀—

हमारे भोजन के पदार्थ

पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि भोजन ही हमारा जीवन है, यदि भोजन हमें न मिले तो हम किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकते। इसके साथ ही यह भी बताया जा चुका है कि साधारणतया जो भोजन और उसके पदार्थ हमारे खाने में उपयोग हुआ करते हैं, वे पदार्थ वास्तव में हमारे भोजन के नहीं हैं। यहाँ पर भोजन के सम्बन्ध में कुछ विस्तार के साथ लिखकर इस बात का विचार करना है कि प्रकृति ने, किस प्रकार का भोजन करने के योग्य हमारे शरीर की रचना की है।

भोजन के सम्बन्ध में सब से पूर्व यह जानने की आवश्यकता है कि जो भोजन जितना शीघ्र पच सकता है, वही उतना लाभदायक होता है किन्तु इस बात का भ्रम न केवल सर्व-साधारण में वरन् समाज के समझदार, विचारशील व्यक्तियों में भी अधिक से अधिक परिमाण में पाया जाता है कि अमुक पदार्थ अधिक बल और रक्त पैदा करने वाले हैं, इस भ्रम के कारण समस्त व्यक्ति उसी प्रकार के भोजन खाने और खिलाने के अभ्यासी होते हैं। इस छोटे से भ्रम के कारण, मनुष्य के स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है। जिन वस्तुओं में इस प्रकार के गुण पाये जाते हैं, वे कितने भारी और अपाचक होते हैं, सामान्यतः इस बात का कभी विचार भी नहीं किया जाता। होता यह है कि उन पदार्थों से बने हुए भोजन को पचने के लिए जितना समय चाहिए, उतना समय नहीं मिलता, ऐसी अवस्था में लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। जब तक एक बार का खाया हुआ भोजन भली-भांति पच न जाय तब तक

दूसरी बार कदापि न खाना चाहिये। किन्तु हम लोग भूख के लिए भोजन नहीं करते, भोजन करने की आवश्यकता और व्यवस्था ही कुछ और है। दोपहर को जो हमने भोजन किया है वह पूर्णरूप से पचा है या नहीं, यह जानने की कोशिश नहीं होती, किन्तु होता यह है कि सायंकाल भोजन का समय होने पर, भोजन करना पड़ता है। यदि दोपहर को इस प्रकार के भोजन किए गए हैं जो सायंकाल तक पूर्णरूप से नहीं पचे तो उसको बिना पचाए, भोजन करना, शरीर के लिए रोग का निमंत्रण देना है।

शरीर का कोई भी रोग अकारण नहीं हुआ करता और न उसके पैदा होने का कोई ईश्वरीय कारण होता है। उसके पैदा होने का एकमात्र कारण हमारे जीवन की अव्यवस्था है। हमें थोड़ी-सी बुद्धि से काम लेना चाहिए और समझना चाहिए कि हम जो खाना खाते हैं, वह भूख के लिए, न कि भोजन का समय हो जाने के लिए।

जो पदार्थ बहुत भारी होते हैं, वे अत्यन्त अपाचक भी होते हैं, उन अपाचक और भारी वस्तुओं की अपेक्षा हलके भोजन कई बार खाये जा सकते हैं और फिर भी वे पच सकते हैं। ऐसी अवस्था में यदि वे भारी पदार्थ ठीक तौर पर पचाए भी जा सकें तो दोनों प्रकार के आहारों में कोई वैषम्य उपस्थित नहीं होता। परन्तु ये सब बातें सभी के लिए एक-सी नहीं हैं। सभी की प्रकृति और खाने-पीने की शक्तियों में अन्तर होता है, इस प्रकृति और शक्ति के अनुकूल ही भोजन सुखकर, लाभकर और उपयोगी होता है।

प्रत्येक प्राणी का वही भोजन है जिसका अपना रूप, आकार और स्वाद खाने वाले के लिए रुचिकर प्रतीत होता है। वही उसके लिए पाचक होता है, और उसके जीवन को शक्ति देने

वाला होता है। जो पदार्थ आग में पकाकर, भिन्न-भिन्न प्रकार के मसाले लगाकर और घृत में भूनकर बनाए जाते हैं, वे, भोजन खाने वालों के लिए किसी प्रकार उतने लाभदायक नहीं होते जितने कि असली रूप में खाये जाने वाले पदार्थ हो सकते हैं। कोई भी पदार्थ या उससे बना हुआ भोजन जब आग में पकाया जाता है अथवा भूना जाता है तो उसमें जीवन-शक्ति पैदा करने वाला जो अंश होता है वह जलकर नष्ट हो जाता है और इसके बाद भी जब अनेक प्रकार के मसालों का सम्मिश्रण किया जाता है, तो वे भोजन पाचन-क्रिया के लिए बहुत कठोर हो जाते हैं, उनका यह अपाचन-गुण, खाने वाले के लिए हानिकारक हो जाता है। जो भोजन रसेदार बनाए जाते हैं, वे कठिनाई के साथ पचने वाले होते हैं। उनके ठीक-ठीक न पचने पर पेट के विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार पेट की ही खराबी समस्त शरीर के स्वास्थ्य बिगाड़ने और उसको रोगी बनाने की कारण होती है।

जो भोजन अथवा पदार्थ अपने असली रूप में घृणा-जनक होते हैं, वे हमारे लिए कभी भी लाभदायक नहीं होते और इस प्रकार के पदार्थों और भोजनों में सब से अधिक हानिकारक माँस होता है। प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी को उसके भोजन अथवा भोज्य पदार्थों के प्रति सहज ही रुचिकारक प्रवृत्ति उत्पन्न की है, जिसका जो भोजन नहीं होता, उसके प्रति सहज ही उसमें अरुचि का भाव उत्पन्न होता है। संसार का कोई भी जीव अपनी भोज्य वस्तुओं के अतिरिक्त किसी वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकता। मनुष्य की स्वाभाविक बुद्धि और रुचि कभी भी माँस को स्वीकार नहीं कर सकती। सर्वसाधारण को उस पर समान रूप से अरुचि और घृणा होती है। समय और संयोग पाकर जो लोग माँस खाने लगते हैं, उनको भी माँस के

असली रूप पर कितनी घृणा और अरुचि होती है, यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं।

प्रत्येक पदार्थ पक जाने की अपेक्षा, कच्चा अधिक पाचक और जीवन-शक्ति देने वाला होता है। परन्तु यह खेद की बात है कि सर्वसाधारण में कच्चे पदार्थों के खाने का अभ्यास कम पाया जाता है। बहुत लोगों में तो इस बात का मिथ्या ज्ञान पाया जाता है कि कच्चे पदार्थ हानिकारक होते हैं किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। अनाज, जो साधारणतया हमारे खाने के काम में आता है, अपने स्वाभाविक रूप में अधिक पाचक होता है। प्रत्येक अनाज कच्चा समूचा चबा-चबाकर खाने से जो जीवन-शक्ति प्राप्त हो सकती है वह शक्ति उस अनाज के पीस डालने और आग पर पकाने या भूनने से कदापि नहीं प्राप्त हो सकती। उनके समूचे दाने को चबा-चबाकर खाने से उनमें पाचन-क्रिया उत्पन्न हो जाती है। इस पाचन-क्रिया के उत्पन्न हो जाने का कारण उनको मुख में अधिक देर तक चबाना है। कोई भी भोजन मुँह में जितनी ही देर तक चबा-कर निगला जाता है, उतना ही वह शीघ्र पाचक हो जाता है। आटे की भूसी छानकर रोटी बनाने के पूर्व ही अलग कर दी जाती है वह, उस रोटी का एक बहुत आवश्यक अंग होता है, परन्तु यह भूल समाज में बहुत पाई जाती है। यह छनी हुई भूसी जो उस अनाज को छिलका होती है, उसके साथ बने हुए भोजन के पचाने में बहुत बड़ी सहायता करती है। लोग इस छिलके को निकाल कर अलग कर देते हैं, इसलिए कि वे उसको बेकाम समझते हैं किन्तु उनको समझना चाहिये कि उस छिलके के निकल जाने से, अनाज का गूदा भाग, जो महीन आटे के रूप में मिल जाता है, उस अनाज के गुणों को अनेक अंशों में खो देता है।

इस प्रकार खाने के सम्बन्ध में दो प्रधान अव्यवस्थाएँ हमारे सामने हैं। पहली अव्यवस्था यह है कि जो पदार्थ हमारे खाने के नहीं हैं, उनके खाने की व्यवस्था अथवा प्रथा का होना। माँस, मदिरा और मादक पदार्थ, मनुष्य का भोजन नहीं है, और इस बात का इससे अधिक उत्तम और क्या प्रमाण हो सकता है कि मनुष्य स्वभावतः उससे अरुचि और घृणा करता है। छोटे-छोटे बालक और बालिकाएँ, जिनका स्वाभाविक ज्ञान नष्ट नहीं हुआ, माँस और मदिरा जैसे पदार्थों का नाम सुनते ही अत्यन्त घृणा के साथ मुँह बनाती हैं, उनके उस समय के भाव यह प्रकट करते हैं कि वे इन वस्तुओं को ग्रहण करने योग्य नहीं समझतीं। किन्तु उन्हीं के सामने यदि दूध, मक्खन अथवा किसी फल का नाम ले दिया जाय तो वे बालक और बालिकाएँ उसके लिए कातर और उत्सुक हो उठेंगी। इसका तो यही अर्थ होता है कि उनकी स्वाभाविक बुद्धि यह बताती है कि अमुक वस्तुएँ उनके खाने के योग्य हैं और अमुक नहीं।

दूसरी अव्यवस्था यह है कि जो पदार्थ हम खा भी सकते हैं उनको खाने के पूर्व, उनके असली रूप और गुण को नष्ट कर डालते हैं, इसका यह फल होता है कि उनसे जो लाभ होना चाहिये वह नहीं होता और बहुत अंशों में उनसे हानि ही होती है। इन दोनों अव्यवस्थाओं से बचने के लिए जो वास्तविक हमारे जीवन का भोजन है, उसके प्रति हमारा ध्यान नहीं है। प्रकृति ने भिन्न-भिन्न प्राणियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों की व्यवस्था की है, इस प्रकार जो पदार्थ, जिसके लिए निर्माण किया है, उसी के योग्य उसके शरीर का आकार-प्रकार और यंत्र निर्माण किया है। अस्तु, हमारे शरीर की अवस्था क्या है और हमारे जीवन का प्राकृतिक भोजन क्या है, इस बात का सूक्ष्म-रूप से विवेचन करना है।

प्रकृति के नियम अत्यन्त सरल, सुबोध और अपने आप प्रतिपादित होने वाले हैं किन्तु उनकी स्वाभाविकता जहाँ तोड़ी-मरोड़ी जाती है, वहाँ कुछ का कुछ होना अवश्यम्भावी है। जो वृक्ष और पौदे जहाँ जिस ज़मीन या मिट्टी से अपने लिए खाना प्राप्त कर सकते हैं, उसी प्रकार की मिट्टी वाली भूमि में उनका जन्म होता है. उनके भोजन का प्रबन्ध किसी को करना नहीं पड़ता। वे स्वयं अपनी आवश्यकता पूरी कर लेते हैं। किन्तु जब कोई वृक्ष दूसरी प्रकार की मिट्टी वाली भूमि में ले जाकर लगाया जाता है, तो वह सूख कर मुरझा जाता है, इसलिए कि उस मिट्टी से उसको अपने योग्य खुराक़ नहीं मिलती। उसका यह अर्थ नहीं है कि पौदों को खुराक़ पहुँचाने वाले उस मिट्टी में गुण नहीं थे, गुण थे, उसमें वृक्षों के लायक भोजन के अंश भी थे, परन्तु वृक्षों में अन्तर है। सभी वृक्षों के लिए एक ही प्रकार की खुराक आवश्यक नहीं होती। समुद्र के किनारे जो वृक्ष वहाँ की नमकीन मिट्टी में खूब हरे-भरे रहते हैं और फलते-फूलते हैं, वे अन्यत्र कहीं, किसी दूसरे प्रकार की मिट्टी में हरे-भरे नहीं रह सकते। कारण स्पष्ट है कि उनके लिए जो भोजन और खुराक के पदार्थ, उस मिट्टी से प्राप्त होते हैं, वे दूसरी मिट्टी से नहीं प्राप्त हो सकते। इससे भी अधिक सुन्दर और आश्चर्य की बात यह है कि वे वृक्ष उसी भूमि में पैदा होते हैं जो उनके लिए अनुकूल होती है। प्रकृति का यह नियम कितना मनोहर और सुबोध है। अब देखना यह है कि वृक्षों के भीतर अर्थात् एक ही जाति में इतना अन्तर पाया जाता है तब दूसरी की लिए क्या कहना है।

समस्त जीवों के सम्बन्ध में ये बातें विभिन्नता रखती हैं। सृष्टि के समस्त जीवों को, उनकी भोजन सम्बन्धी प्रकृति में, दो भागों में बाँटा जा सकता है। कुछ तो माँस-भोजी होते हैं

और कुछ शाकभोजी। तीसरी एक और श्रेणी उन लोगों की हो सकती है जो माँस और शाक दोनों के अभ्यासी होते हैं, परन्तु थोड़ी-सी गम्भीर आलोचना करने से मालूम होगा कि उनके खाने के पदार्थ, कोई तीसरी श्रेणी की नहीं है, इस प्रकार माँस-भोजी और शाक-भोजी, दो प्रकार के जीव, संसार में पाये जाते हैं। अब इन दोनों प्रकार के भोजन, उनके खाने वालों की प्रकृति और उनके शारीरिक यंत्रों की ओर सब से पहले ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रत्येक जीव के शरीर में तीन प्रकार के अवयव इस बात का निर्णय करते हैं कि उसका भोजन क्या है। वह मांस-भोजी है अथवा शाक-भोजी। वे तीन अवयव हैं, दांत, आमाशय और मुख से लेकर पेट तक, वे अवयव, जो भोजन में हर प्रकार से सहायक होते हैं। ये तीन अंग, प्रत्येक जीव के भोजन की व्यवस्था का निर्णय करते हैं।

दांत तीन प्रकार के होते हैं (१) काटने वाले दाँत (Incisors), (२) कीले अर्थात् कुत्ते के-से दांत (Canine), (३) पीसने या चबाने वाले दांत (Molars)। जो जीव मांस-भोजी होते हैं, उनके काटने और कुतरने वाले दांत बहुत छोटे होते है, उन दांतों का उनको बहुत कम प्रयोग करना पड़ता है। उनके कीले दांत बहुत लम्बे होते हैं। ये लम्बे दांत उनके मुख में आगे तक होते हैं जो बनावट में नोकदार, चिकने और कुछ टेढ़े होते हैं। ये लम्बे दांत चबाने या पीसने के काम में नहीं आते। ये दांत केवल शिकार को पकड़ने के लिए होते हैं। जंगल के भयानक जानवरों के दांत और भी बहुत बड़े ऐसे ढंग के बने होते हैं, जिनको देखते ही, उनका काम और अर्थ सहज ही समझ में आ जाता है। इन बड़े दाँतों के पीछे काँटेदार नोकीले दांत होते हैं, जो मांस के छोटे-छोटे टुकड़े करने में काम आते हैं। ये कांटेदार दांत, मुँह चलाते समय, कभी

एक दूसरे से टकराते नहीं, बल्कि कैंची के दोनों परतों की भाँति एक दूसरे से मिल जाते हैं। इसके द्वारा मांस का एक एक टुकड़ा अलग-अलग हो जाता है। इन मांसाहारी जीवों के दांत और जबड़े इस योग्य नहीं होते कि वे मांस को पीस या चबा सकें। सभी लोग कुत्तों को देखते हैं कि जब उनको रोटी दी जाती है तो वे उसके बहुत बड़े-बड़े टुकड़े मुँह में लेते ही निगल जाते हैं, कारण यह है कि उनके दांत और जबड़े, भोजन को आदमी की भाँति चबाने और पीसने का काम नहीं करते।

शाक और बनस्पति खाने वाले जीवों के कुतरने अथवा काटने वाले दांत बड़े-बड़े होते हैं, जिनसे वे शाक और घास के छोटे-छोटे टुकड़े करने का काम लेते हैं। पीसने वाले दांत ऊपर की ओर कुछ चौड़े होते हैं जो शाक-पात के चबाने और पीसने का काम करते हैं।

हमें और आगे बढ़कर. बन्दरों के दाँतों पर विचार करना चाहिए। बन्दर के दांत और मनुष्य के दांत, प्रायः समान होते हैं। मनुष्य के दाँतों की भांति, बन्दरों के दांत भी प्रायः समान लम्बाई के होते हैं। इन दांतों से स्पष्ट पता चलता है कि जो जीव शाकाहारी, फलाहारी और घास-पात का आहार करने वाले हैं उनके दांत मांसाहारी जानवरों के दांतों को भाँति नहीं होते। इससे प्रकट होता है कि प्रकृति ने उनके दांतों को केवल बनस्पति खाने के योग्य बनाया है और इसी लिए वे मांस खाने वाले नहीं हैं। अब यदि प्रश्न किया जाय कि मनुष्य के दांत किस जीव के साथ मिलते हैं तो सहज ही समझ में आता है कि मनुष्य के दांत बन्दरों के दांतों से मिलते हैं। दांतों के अतिरिक्त शरीर की बनावट आदि मनुष्य-जीवन की अन्यान्य बातें, बन्दरों के साथ समानता

रखती हैं। मनुष्य-जाति के आदि-काल का वैज्ञानिक अन्वेषण करने वालों ने तो यहाँ तक निश्चय करके बताया है कि मनुष्य, बन्दर की संतान है। सृष्टि के वहुत पुरातन काल में मनुष्य, बन्दरों के रूप-प्रति रूप में हुआ करते थे जो हो, यहाँ पर इस बात के समर्थन और अन्वेषण से कोई सम्पर्क नहीं है। परन्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य, दाँतों की बनावट में बिलकुल बन्दरों के समान है। इसलिए कि न तो मनुष्य के दांत मांसाहारी जीवों से मिलते हैं, इसलिये वह मांसाहारी नहीं हैं, मनुष्य के दांत, उन पशुओं से नहीं मिलते जो बनस्पति, शाक-पात खाते हैं, इसलिये मनुष्य बनस्पति या शाक,पात खाने वाला नहीं है। मनुष्य के दाँत उन जीवों से भी नहीं मिलते जो मांस, मेवा, अनाज आदि सभी कुछ खा सकते हैं इसलिए मनुष्य मांस, मेवा और अनाज आदि सभी कुछ खाने के योग्य नहीं बनाया गया। किन्तु मनुष्य के दांत, बन्दरों के समान होते हैं जो फलाहारी होते हैं, इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य का प्राकृतिक भोजन फलाहार है!

जो लोग मांसाहार के पक्ष में होते हैं, वे इस बात को पुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं कि मनुष्य न तो मांसाहारी है और न शाकाहारी, वरन् वह दोनों प्रकार का जीव है। अर्थात् वह दोनों प्रकार के भोजन खा सकता है। किन्तु यह बात सर्वथा मिथ्या है। किसी बात को बिना किसी बाद विवाद के मान लेना और बात है किन्तु किसी विवेचना के साथ किसी बात का समझना और बात है। किसी जीव का भोजन, उस पदार्थ का रूप, ज्यों का त्यों होता है जो जानवर मांस खाते हैं, उनको मांस को आग पर भूनने की आवश्यकता नहीं होती। जो पशु, शाक और बनस्पति खाते हैं, उनको भी अपने भोजन के पदार्थ आग पर तपाकर बनाने की आवश्यकता नहीं होती। पक्षियों से

लेकर छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े तक अपने भोज्य पदार्थ, उन पदार्थों की असली दशा में ही खाते हैं। यही अवस्था मनुष्य की भी है। मनुष्य का वही भोज्य पदार्थ है जिसको वह, उस पदार्थ की असली हालत में खा सकता है। इस अवस्था में मनुष्य कच्चा शाक और बनस्पति नहीं खा सकता, कच्चा मांस भी नहीं खा सकता, किन्तु बड़ी रुचि और स्वाद के साथ वह फलों को खा सकता है। इसलिए प्रत्येक अवस्था में यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य का भोजन फलों को छोड़कर और कुछ हो ही नहीं सकता।

यह तो बहुत साधारण बात है और बड़ी सुविधा के साथ समझी जा सकती है कि यदि मनुष्य मांसाहारी होता तो वह मांस को बिना पकाये और बिना उसमें कुछ मिलाये बड़े स्वाद के साथ खा सकता, किन्तु ऐसा नहीं है। कोई भी मनुष्य कच्चा मांस नहीं खा सकता और न किसी भी युग में मनुष्य कच्चा मांस खा सका है, इसलिए यह तो निश्चय ही है कि मांस मनुष्य का भोज्य पदार्थ नहीं हो सकता। यही अवस्था बनस्पति के सम्बन्ध में भी हैं। यदि मनुष्य वनस्पति और घास-पात बिना पकाए, कच्चा खा सकता, तो यह मानने में किसी को कुछ भी आपत्ति न होती कि मनुष्य वनस्पति या शाक-पात का भोजी है किन्तु ऐसा भी नहीं है। उसके खाने के एक मात्र पदार्थ फल हैं जिनको वह कच्चे-पक्के सभी रूपों और अवस्थाओं में रुचि और स्वाद के साथ खा सकता है। ऐसी अवस्था में मनुष्य को किसी भी तर्कना के साथ मांसाहारी सोचना या प्रमाणित करना न केवल मनुष्य-जीवन के साथ, वरन् प्रकृति के साथ अनर्थ करना है!

मनुष्य फलाहारी है, फल ही उसके जीवन का उपयोगी और प्राकृतिक भोजन है, इस बात को अनेक रूप से समझा जा सकता है। प्रत्येक जीव अपनी इन्द्रियों के द्वारा अपना

भोजन पहचानता है। भोजन की पहचान बताने वाली इन्द्रियों में जिह्वा और नाक है। जंगली जानवर दूर से ही, बिना देखे सुने, केवल नाक के द्वारा शिकार की गन्ध पाकर सचेत होता है और गन्ध के सहारे-सहारे वह चलकर अपने शिकार को खोजता है। इस प्रकार जब वह शिकार को आँख से देखता है तो बड़ी तेज़ी के साथ, उस पर झपटता है और बात की बात में लोहू-लुहान करके तुरन्त उसका मांस और रक्त खा-पीकर प्रसन्न होता है। उन जानवरों की नाक में ऐसी शक्ति होती है जिससे दूर से ही अपने शिकार की गन्ध उनको मालूम हो जाती है। नाक के द्वारा वे अपने शिकार के पास पहुँचते हैं और जिह्वा के द्वारा वे उसका स्वाद पाते हैं और प्रसन्न तथा संतोष अनुभव करते हैं। यही अवस्था प्रत्येक जीव की है। सभी जीवों को भोजन के सम्बन्ध में नाक, गंध के द्वारा अनेक बातों की जानकारी कराती है। मांसाहारी पक्षी बहुत दूरी से मांस की गन्ध को मालूम करते हैं। अनेक परतों के भीतर कोई खाने की वस्तु बँधी हुई रक्खी होगी किन्तु चूहे उसकी गन्ध से, उसे बड़ी आसानी के साथ ढूँढ़ लेंगे और उसके पास पहुँच जायँगे। चीटियाँ और चींटे, मीलों की दूरी से अपने भोजन की गंध पाते हैं और उसीके आधार पर वे वहाँ तक पहुँचते हैं। मनुष्य को भी प्रकृति ने इस प्रकार की शक्ति प्रदान की है परन्तु मनुष्य ने अपने इस गुण को नष्ट कर डाला है फिर भी उसका अस्तित्व बराबर काम करता है। किसी भी भोज्य पदार्थ की पहचान मनुष्य नाक के द्वारा सूँघ कर ही किया करता है। यदि कोई पदार्थ सड़कर या गलकर खराब हो गया है तो मनुष्य नाक के द्वारा सूँघकर ही जानता है। पशु जो वनस्पति खाते हैं, सूँघने के बाद ही खाना प्रारम्भ करते हैं। यदि उनके भोज्य पदार्थों में कोई रक्त इधर-

उधर छिड़का दे या मांस के टुकड़े डाल दे तो वे अपने खाने के सामान को छोड़ देंगे। इस प्रकार नाक और जिह्वा—दो इन्द्रियों के द्वारा प्रत्येक जीव को अपना भोजन मालूम होता है। यदि इन दोनों इन्द्रियों के द्वारा विचार किया जाय तो मालूम होगा कि किसी भी मनुष्य की नाक और जिह्वा को कच्चे मांस की गन्ध और उसका स्वाद रुचिपूर्ण न मालूम होगा। जो लोग बकरे का मांस खाते हैं, यदि उनसे कहा जाय कि ज़िन्दा बकरे के बदन में दाँत मार कर अपने मांसाहारी होने का प्रमाण दें तो किसी मांसाहारी मनुष्य का इसके लिए प्रस्तुत होना असम्भव है। यदि मनुष्य मांसाहारी होता तो कच्चे मांस के प्रति उसकी अरुचि और घृणा कभी भी न होती।

सर्वसाधारण में मांस के प्रति घृणा होती है, जो मांस खाते हैं, उनको भी, उस समय जब वे मांसाहारी न थे, घृणा थी, इसका कारण क्या है? किसी जीव को मार कर या बध कर और उसका मांस काट कर, खाने के लिए मांस तैयार किया जाता है, मारना और बध करना ही मानव प्रकृति का विरोधी है। प्रत्येक मनुष्य को स्वभावतः किसी का बध अच्छा नहीं लग सकता। जहाँ पर पशुओं का बध किया जाता है; वे स्थान सार्वजनिक रास्तों से हटकर, यथासम्भव एकान्त में बनाये जाते हैं। मांस बेचने की दूकानों पर नियम पूर्वक परदा पड़ा रहता है। इन सब बातों का कारण क्या है? वास्तव में यह बताना अनावश्यक है कि न तो बध-क्रिया हमारी आँखों और नासिका को रुचिकर प्रतीत हो सकती और न मांस ही। इसी आधार पर जब कोई मार्ग में मांस लेकर निकलता है तो कदाचित् उसे म्युनिसिपल बोर्डों के नियमानुसार उस मांस को बन्द करके या ढक कर के ले चलना पड़ता है। क्या यही सब बातें साबित करती हैं कि मांस, मनुष्य के भोज्य पदार्थों

में से है ? जिसको देखकर हमारी आँख और नाक को इतनी घृणा होती है वह पदार्थ हमारे खाने के योग्य हो सकता है ? किसी भी फल की सुगंध क्यों हमारे मन और मस्तिष्क को प्रसन्न कर देती है ? फलों को देखकर ही उनके खाने के लिए क्यों हमारे मुँह में पानी आजाता है, और हमारी मानसिक प्रवृत्तियाँ क्यों ललचा उठती हैं ? इसलिए न कि फल हमारे भोज्य पदार्थ हैं ? प्रकृति ने फल खाने के योग्य मनुष्य को निर्माण किया है, इसलिए स्वभावतः उसको फलों से प्रेम होता है।

मनुष्य को प्राकृतिक मांस से घृणा होती है, इसलिए वह मांस नहीं खाता, किन्तु दूसरे से वह मांस खाना सीखता है। मांसाहारी लोगों से बातें करने पर बहुत से ऐसे लोग मिलते हैं जो कहते हैं कि पहले हम मांस न खाते थे और हमको बड़ी उससे घृणा थी किन्तु अमुक प्रकार की घटनाओं में पड़कर अथवा अमुक-अमुक व्यक्ति की संगति में पड़कर हम भी खाने लगे। इसी से कहा जाता है कि मनुष्य मांसाहारी नहीं है, वह मांसाहारी बनाया जाता है। दी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग (The New Science of healing) के लेखक ने अपनी पुस्तक में आँखों देखी एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक कुटुम्ब में एक हिरन पाला गया था। हिरन का भोजन वनस्पति है, यह बात सभी लोग जानते हैं, उस कुटुम्ब में एक कुत्ता भी पला था। कुत्ते को बने हुए मांस का रसा और कभी-कभी मांस भी मिला करता था। कुत्ते का यह भोजन, जब कभी उस हिरन के आगे रख दिया जाता तो उसको सूँघकर वह छोड़ देता। हिरन का खाना अलग वहीं पर दिया जाता। कुत्ता अपने आगे का भोजन समाप्त करके बचा हुआ भोजन का रसा जिह्वा से चाट-चाटकर खाया करता था। हिरन भी कभी-कभी कुत्ते के बर्तन में मुँह डाल देता और नाक सिकोड़ कर अपना मुँह खींच लेता।

कुछ दिनों के बाद देखा गया कि वह हिरन गोश्त के रसे को चाटने लगा। इस प्रकार धीरे-धीरे वह मांस के टुकड़े भी खाने लगा। यह अत्यन्त रहस्य पूर्ण बात थी। कुछ दिनों के बाद वह हिरन बीमार पड़ा और अक्सर बीमार रहने लगा। बहुत दिनों तक उसका जीवन रोगीला बीता और अन्त में वह मर गया।

ऊपर की इस घटना से प्रकट होता है कि किसी भी जीव को, उसके प्रकृति भोजन के विपरीत, भोजन करना सिखाया जा सकता है, किन्तु इसका फल, उसके लिए कभी हितकर नहीं हो सकता। उसको भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग घेरे रहेंगे और वह रोगी होकर निर्बल होजायगा। स्वभाव के विरुद्ध भोजन किसी को भी लाभ नहीं पहुंचा सकता। मानव जाति अपने स्वाभाविक भोजन को छोड़कर, दूसरे अप्रिय, अरुचिकर और प्रतिकूल भोजन करने के कारण उत्तरोत्तर रोग-ग्रसित होती जाती है। उसकी स्वाभाविक शक्ति नष्ट होगई है और वह बराबर निर्बल होती जाती है। मनुष्य अपने स्वाभाविक भोजन के द्वारा जितना शक्तिशाली और नीरोग रह सकता था, वह आज मनुष्य-जाति के लिए सपना है! अस्वस्थ और रोगी मनुष्य कभी भी पूर्ण आयु नहीं प्राप्त कर सकता। सर्वसाधारण का यह विश्वास अत्यन्त भ्रमात्मक है कि 'हमारी आयु निश्चित होती है, अवस्था का कोई परिमाण नहीं होता। हम स्वस्थ और आरोग्य रहकर बहुत बड़ी अवस्था तक जीवित रह सकते हैं। स्वस्थ और आरोग्य बनाने वाला एक मात्र हमारा, स्वाभाविक भोजन है, उसके प्रतिकूल भोजन, हमें सदा अस्वस्थ और रोगी बनावेगा, जिससे हमारे शरीर की जीवन-शक्ति निर्बल होकर, समय से पूर्व ही, हमारे जीवन को समाप्त कर देगी। इसी बात की पुष्टि के लिए एक बात और हम प्रमाण में देना चाहते हैं। जब डाक्टर या वैद्य किसी रोगी को

अच्छा करने में असमर्थ होजाते हैं और कोई उपाय उनके सामने शेष नहीं रह जाता तो वे अधिक समय तक के लिए उस रोगी को फलाहार कराते हैं और उसके दूसरे भोजन बन्द करा देते हैं। इस प्रकार का संयोग प्राप्त होने पर क्या कभी यह कोई सोचता है कि डाक्टर साहब ने अथवा वैद्य साहब ने ऐसा क्यों किया—क्या यह भी कोई चिकित्सा है? बात यह है कि स्वभाव के विरुद्ध भोजन प्राण-संहारक होता है। फिर भी मनुष्य के जिन्दा रहने का कारण औषधि की व्यवस्था है। ये औषधियाँ हमको, उस विषाक्त भोजन में भी जीवित रखने की चेष्टा करती हैं। किन्तु जब किसी रोगी को अच्छा करने में वे औषधियाँ समर्थ नहीं होतीं, तो उस रोग के पैदा करने की जड़ कुछ समय तक के लिए काट दी जाती है और ऐसा करने पर वह रोगी अच्छा हो जाता है। कारण क्या है? वे विषाक्त पदार्थ, जो रोग को बढ़ा रहे थे, वे बन्द कर दिए गए और नई जीवन-शक्ति पैदा करने वाले उसके स्वाभाविक पदार्थ फल खिलाने आरम्भ कर दिये गए, ऐसी अवस्था में रोगी को अच्छा हो ही जाना चाहिए।

हमारा वास्तविक भोजन क्या है, इस पर अब अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम प्रकृति के भिन्न-भिन्न अंगों पर ध्यान पूर्वक विचार करें तो हम सहज ही समझ सकते हैं कि प्रकृति ने हमारे भोजनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के फलों की व्यवस्था की है और हमारे इस स्वाभाविक भोजन के अनुकूल ही हमारे शरीर की रचना की है। हमारे पेट का आमाशय और पाचन-शक्ति इन फलों को ठीक-ठीक रूप में पचा सकती है। फलों को खा सकने और उनके पचा सकने के योग्य हमारे शरीरी यंत्र का निर्माण करके प्रकृति ने मानों हमारे लिए फलों के खाने का उपदेश दिया है। यह तो सोचने की बात है

कि प्रकृति के इस आदेश को उल्लंघन करके भला हम किस प्रकार सुखी और स्वस्थ रह सकते हैं। हमारे जीवन का यही प्रायश्चित है कि हम जीवन-भर चिकित्सा करते रहें और एक दिन के लिए भी स्वास्थ्य के सच्चे सुख का अनुभव न कर सकें।

कुछ लोगों का यह भ्र हो सकता है कि केवल फल खाकर हम कैसे जीवित रह सकते हैं। वास्तव में जो इस प्रकार का भ्रम करते हैं उनको इन बातों के तथ्य का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। हमारे भोजन की जो वर्तमान प्रणाली है उसको हटा कर, यदि हम अपने आपको फलों के खाने का अभ्यासी बनावें तो हमारा अनुभव हमको बतावेगा कि फलों के आहार से जो शक्ति और पुरुषार्थ हमको प्राप्त होता है वह अस्वाभाविक किसी प्रकार के भोजन से सम्भव नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रकार के फल, मेवे, अन्न और कन्दमूल जो हमारी आँखों और नासिका को रोचक मालूम हों और खाने में स्वादिष्ट जान पड़ें, वे सब हमारे भोजन के सर्वोत्तम पदार्थ हैं। ये फल, संसार के सभी देशों में यथेष्ट रूप से पाए जाते हैं, और यदि कहीं पर इनकी पैदावार कम हो तो उनकी पैदावार बढ़ाई जा सकती है जिससे कि हमारे जीवन के साधन, सहज और अधिक परिमाण में प्राप्त हो सकें और यदि किसी देश विशेष में ये फल नहीं हो सकते तो समझ लेना चाहिए कि वह देश मानव प्रकृति के अनुकूल नहीं है, अतएव वह मनुष्यों के निवास करने के सर्वथा अयोग्य है। वास्तव में हमारा भोजन वही है जिसको खाने के लिए आग पर पकाने, नमक, मिर्च, मसालों के लगाने और तेल या घी में भूनने की आवश्यकता न पड़े। इस नियम के अनुसार विभिन्न फलों को छोड़कर और कोई चीज़ हमारे खाने के योग्य हो ही नहीं सकती।

—:-—

हमारी भूल और उसका परिणाम

हमारे शरीर स्वस्थ्य और निरोग क्यों नहीं हैं—वे दुबले-पतले और जीर्ण-शीर्ण क्यों दिखाई देते हैं ? छोटे-छोटे बच्चे और नवयुवक नाज़ुक क्यों हो रहे हैं ? स्त्रियों के बदन पर रक्त और मांस क्यों सूखा हुआ है ? आदि-आदि प्रश्नों का एक ही उत्तर है, और वह यह कि समस्त मानव समाज रोगी है !

यदि हम अपनी दिनचर्या पर विचार करें तो मालूम होगा कि हमारा सम्पूर्ण जीवन रोगों का इलाज करने में ही व्यतीत होता है। हमें अपने जीवन का इतना बड़ा और कोई भी काम नहीं करना पड़ता, जितना कि हमें दवाओं का प्रबन्ध करना पड़ता है। पहले तो हमें स्वयं बीमारियों से छुट्टी नहीं है, कभी सिर में पीड़ा है, कभी कमर में दर्द है, किसी दिन हरारत है और किसी दिन बुखार है। ज़ुकाम जैसी बीमारियाँ तो बनी ही रहती हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रोगों से हमें छुट्टी नहीं मिलती, किन्तु उसी अवस्था में यदि ईश्वर ने संतान दी है और एक गृहस्थ का जीवन बिताना पड़ता है तो फिर कहना ही क्या है। सबेरे उठकर डाक्टर साहब के पास अथवा वैद्य जी के पास जाकर एक न एक मुसीबत रोना और दवा की शीशी या पुड़िया ले आना नित्य का नियम है। इसके बाद फिर खाना-पीना अथवा अन्य बातें हैं।

यह सब क्या है ? क्या हममें से कभी कोई इस अवस्था का विचार भी करता है ? क्या कभी हम लोग इन दुरवस्थाओं की ओर देखते और उनके कारणों की विवेचना भी करते हैं ?

और यदि करते हैं तो कौन इस बात का उत्तर देगा कि शहरों में जितने मकान, नागरिकों के रहने के लिए होते हैं, उनके ठीक चौथाई मकानों और इमारतों में दवाखाने, औषधालय होते हैं, क्यों? इसका उत्तर यही न, कि शहरों का जीवन, नागरिकों की ज़िन्दगी इन दवाखानों और औषधालयों पर निर्भर है!

इन दवाख़ानों और औषधालयों की संख्या यहीं तक नहीं है। इनका अभिप्राय उन दवाख़ानों और औषधालयों से है जो किसी वैद्य या डाक्टर के व्यक्तिगत हुआ करते हैं। इनसे कहीं अधिक भयानक सार्वजनिक औषधालय हैं जो धर्मार्थ अथवा परोपकारार्थ हुआ करते हैं। इस प्रकार के औषधालयों की अधिक टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है बताना केवल यह है कि उनमें दवा लेने वालों की संख्या और उनका दृश्य रहस्यपूर्ण हुआ करता है। समाज रोगी है या स्वस्थ, हमारा जीवन रोग-मुक्त है अथवा रोगपूर्ण? इन प्रश्नों का निर्णय करने के लिए इन धर्मार्थ औषधालयों का निरीक्षण करने की आवश्यकता है।

समाज का इस रोग ग्रसित अवस्था का विचार करते हुये एक विद्वान ने लिखा था—'मानव समाज रोगों का दिन पर दिन शिकार होता जाता है। मनुष्य के जीवन का रोगों से इतना घनिष्ट सम्बन्ध होगया है कि जीवन का बहुत बड़ा अंश इसी उलझन में चला जाता है। समाज की इस अवस्था का परिणाम साधारण लोगों, गृहस्थों पर बहुत भयंकर मिलता है। यह अवस्था इस समय उतनी शोचनीय नहीं है जितनी कि भविष्य में उसके शोचनीय हो जाने का निश्चय है। रोगों की इस बढ़ती हुई दुरवस्था का एक अनुचित कारण बहुत अधिक संख्या में डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों का होना है।"

समाज की यह अवस्था सचमुच विचारणीय है। संसार के विद्वानों ने समाज की अवस्था को अनुभव किया है। और उसके कारणों पर भलीभांति विचार किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मुक़दमेबाज़ी के बढ़ जाने का कारण वकीलों की संख्या है, राजनीतिक जीवन को फैलाने और बढ़ाने के कारण समाचार पत्र हैं, व्यभिचार को बढ़ाने वाली वेश्याएँ हैं, भिखमंगों को पैदा करने वाले, दाता हैं, और रोग तथा बीमारियों के बढ़ने का कारण दवाखाने, औषधालय और अस्पताल हैं। ये दवाखाने और अस्पताल किस प्रकार रोगों की वृद्धि करते हैं, संक्षेप में यहाँ पर कुछ प्रकाश डालना है। हम ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकते, जिसमें हमको दंड मिल सकता है, किन्तु जब हमको विश्वास होता है कि उस दंड से हम मुक्त हो सकते हैं तो उस अपराध के करने में जो डर होता है, वह हमारे हृदयों से निकल जाता है। चोरी करने से दंड मिलता है, इसीलिए हम चोरी करने से डरते हैं किन्तु जब हम यह जान लेते हैं कि वकील की पैरवी से हम बचाए जा सकते हैं, तो फिर चोरी करने का हमें कौन-सा डर हो सकता है। यह निश्चित है कि रोग या बीमारी का उत्पन्न होना, हमारे ही जीवन का कोई न कोई अपराध है और उस अपराध का दंड स्वरूप यह रोग है, तो फिर उस रोग से किसी को बचाने का प्रयत्न करना यह साबित करता है कि अपराध करने वालों की संख्या बढ़ाई जा रही है। हम स्वभाव और प्रकृति के विरुद्ध खाना खाकर बीमार होते हैं और जब बीमार होते हैं तो दवाओं की सहायता से उससे मुक्ति पाने की चेष्टा करते हैं, मुक्ति पाने का यह ढंग यदि न होता तो एक बार उसका कष्ट भोगकर हम दूसरी बार कभी उस अपराध का साहस नहीं कर सकते थे। जो लोग, धर्मार्थ औषधालय खोलते

हैं वे परोक्ष में धर्म करते हैं किन्तु समाज के लिए वह हानिकर ही होता है। जिन कोठी वालों के दरवाजों पर भिखमंगों की भीड़ लगती है, और वहाँ पर उनको मुट्ठी-मुट्ठी अनाज मिलता है, वहाँ पर उनके साथ उदारता और दया होती है परन्तु इसका फल यह होता है कि उन भिखमंगों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है इस प्रकार अपरोक्ष में समाज का पतन होता है।

मनुष्य का वास्तविक आहार क्या है, यह बात पीछे बताई जा चुकी है, इस स्वाभाविक आहार और प्राकृतिक भोजन को छोड़ देने के कारण आज मनुष्य-जाति की यह अधोगति हुई है। यदि ये रोग जीवन के कोई आवश्यक अंग होते तो वह मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियों के लिए भी तो होने चाहिये थे। किन्तु पशुओं, पक्षियों, जंगली जानवरों, कीड़ों-मकोड़ों आदि के लिए कभी किसी दवा की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनको बीमारियाँ नहीं होतीं और न उनकी बीमारियों के लिए दवाखाने तथा औषधालय ही खुले हैं। कोई भी बीमारी, जो संयोगवश पैदा होती है वह अपने आप अच्छी भी होती है। फोड़ा-फुन्सी से लेकर, तरह-तरह की बीमारियाँ और भयंकर से भयंकर रोग अपने आप सेहत होना चाहिए, यह प्रकृति का नियम है। यहाँ पर एक रोगी का उदाहरण देना आवश्यक जान पड़ता है। एक आदमी की अवस्था लगभग अड़तीस वर्ष की थी, पानी पीने में उसके दांतों में पानी लगता था। वह आदमी कुछ पैसे वाला था। उसने भिन्न-भिन्न वैद्यों की दवा की और अंत में एक प्रसिद्ध दांत बनाने वाले (Dentist) के पास गया। उसने दांतों को देख कर बताया कि दांतों पर जो enamel (एक प्रकार की पालिश) लगी होती है, उसके निकल जाने से पानी लगने लगता है। उस आदमी के पूछने पर उसने

बताया कि यह पानी का लगना बन्द हो सकता है और इसके लिए उसे क़रीब पैंतीस रुपये ख़र्च करने का अन्दाज़ बताया। उस आदमी ने वैसा ही किया किन्तु उतने रुपये खर्च होजाने के बाद उसका पानी लगना बन्द न हुआ, इसके बाद उस आदमी ने अधिक रुपये खर्च करना उचित न समझा। उसने दवा करना बन्द कर दिया। कुछ दिनों के बाद उसे कुछ ऐसे आदमियों से बातें करने को मिलीं, जिनके दांतों में पानी लगने की बीमारी हो चुकी थी। इन बातों के साथ-साथ, उन लोगों ने यह भी बताया कि यह पानी का लगना अपने आप बन्द भी होगया। यह बाद सुनकर उस आदमी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने एक अंगरेज दांत बनाने वाले से बातें की तो उसने बताया कि—दांतों पर जो enamel अर्थात् एक प्रकार की पालिश होती है उसके निकल जाने से दांतों में पानी लगता है यह enamel अपने आप फिर दांतों पर पैदा हो जाती है, इसके निकल जाने का कारण खाने-पीने का व्यतिक्रम होता है। चिकित्सा के द्वारा कुछ जल्दी वह पैदा होती है।

यही अवस्था प्रत्येक रोग की है। कोई भी रोग, कुछ न कुछ कारण पाकर पैदा होजाता है और अपने आप सेहत हो जाता है। यह अवस्था उस समय होती है जब प्राकृतिक जीवन बिताया जा सकता है। समाज ने अस्वाभाविक जीवन में पदार्पण करके इतना बड़ा भार अपने सिर पर ले लिया है जिसको देखकर सहज ही घृणा होती है। हमें अपने जीवन को समझने और उसको ठीक-ठीक बिताने के लिये न जाने कितनी पुस्तकें और ग्रन्थों को पढ़ना पढ़ता है परन्तु इन पुस्तकों और ग्रन्थों का अन्त नहीं होता। इन पुस्तकों और ग्रन्थों में से एक-एक पुस्तक के भीतर न जाने कितने नियम कितने उपनियम होते हैं। इन पुस्तकों और ग्रन्थों एवम् उनके नियमों और उप-

नियमों का याद करना तो दूर रहा, एक बार पढ़ डालना ही असंभव हो गया है। यह जीवन भी क्या एक बला है! व्यर्थ का यह भार देखकर जी ऊब उठता है। इन सब व्यर्थ आडम्बरों की क्या आवश्यकता है। प्रकृति ने हमारे जीवन को एक बला एवम् आडम्बर के रूप में नहीं निर्माण किया। यह जीवन इतना सहज और सरल है जितना कुछ भी सहज और सरल हो सकता है। जिसने हमें जीवन दिया है, उसने हमको उस जीवन को आवश्यकतानुसार बिताने के लिए स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ प्रदान की हैं। प्रकृति की प्रदान की हुई ये स्वाभाविक प्रवृतियाँ, हमारे जीवन में, वहीं पर नष्ट हो जाती हैं जब हमारा जीवन प्रकृति के विरुद्ध प्रवाहित होता है। उसी अवस्था में, हमको अपना जीवन बिताने के लिये बैलगाड़ियों में लादी जाने वाली इन पोथियों की जरूरत होती है। किन्तु क्या इनसे कुछ वास्तव में उपकार भी होता है? हमें जल कैसा पीना चाहिए, हमें किस प्रकार की वायु का सेवन करना चाहिए? कौन सा भोजन हमें खाना चाहिए और कहाँ कैसे स्थानों में हमें रहना चाहिए, यह सब सीखते-सीखते हम बाल्यकाल से बुढ़ापे तक पहुँचते हैं, किन्तु यदि कोई पूछे कि उससे फ़ायदा क्या उठाते हैं तो कदाचित् यही उत्तर देना पड़ेगा कि कुछ नहीं?

हमें अपने जीवन के लिए जिन-जिन बातों की आवश्यकता है उनको ठीक उसी रूप में प्राप्त करने के लिए प्रकृति ने सभी प्राणियों को शक्तियाँ प्रदान की हैं और समूचे विश्व में उनकी व्यवस्था की है। फिर उनको बताने और पुस्तकों के पन्ने रटाने की क्या जरूरत है और यही कारण है कि मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी प्राणी को उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती जंगलों और बन-पर्वतों पर रहने वाले जानवर तथा पशु-पक्षी पीने के

लिये सुन्दर प्रवाहित जलाशयों नदियों तथा झरनों का पानी पीते हैं, खाने के लिये अपने-अपने स्वभाव के अनुकूल भोजन प्राप्त करते हैं और अपने रहने के लिये सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था करते हैं। यही तो जीवन है। फिर इस जीवन को संचालित करने के लिए हमें जीवन-भर क्यों रोना पड़ता है?

हमारे स्वास्थ्य का रोना इतना विस्तार पा चुका है कि विशेष रूप से उसके बताने की आवश्यकता नहीं है। समाज को रात-दिन सदा-सर्वदा एक न एक बीमारी के कष्ट में दुखी रहना पड़ता है। ऐसी अवस्था में भी यदि कोई इस दुरवस्था से अपरिचित रहे हों तो उनको चाहिये कि वे समाचारपत्र, मासिक पत्र तथा भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों को उलट कर देखें तो उनको उनमें देखने को मिलेगा कि समाज के बिगड़े हुए स्वास्थ्य, बढ़ते हुये स्वाभाविक और अस्वाभाविक रोग किस किस प्रकार के हैं और उनके कारण समाज की शक्ति कितनी निर्बल हो गई है! चिकित्सा करते-करते विज्ञापन दाताओं और इश्तहारबाजों ने तो समाज का जीवन ही अश्लील कर डाला है।

थोड़े से संतोष की बात यह है कि समाज में कुछ दूरदर्शी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वे सोचने लगे हैं कि इस दुरवस्था का मूल कारण क्या है। यहाँ पर भिन्न-भिन्न लोगों के विचारों और रिपोर्टों के उद्धरण देकर इस बढ़ती हुई दुरवस्था पर विशेष रूप से प्रकाश डालना चाहते हैं। लार्ड केलवन ने इस स्थिति की मीमांसा करते हुए लिखा है—

'मैं बहुत समय के पश्चात् इस नतीजे पर पहुंच सका हूं कि हमारे शरीर में जो रोग उत्पन्न होकर हमारे जीवन के

सुखों को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं, वे प्रायः सभी हमारे अस्वाभाविक भोजनों के द्वारा उत्पन्न होते हैं।"

यह बात सभी को मालूम है कि जीवन का सारा सुख, स्वास्थ्य पर निर्भर है। इस स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिये समाज में आये दिनों कौन-से प्रयत्न नहीं किये जा रहे हैं ? परन्तु वे निष्फल हो जाते हैं, अथवा यों कहा जाय कि मनुष्य के जीवन में जो शक्ति और पुरुषार्थ होना चाहिये, वह नहीं दिखाई देता। दक्षिणी अफ्रिका में दस हजार मैञ्चेस्टूल युवकों ने देश और सरकार की सेवा करने के लिये प्रार्थना-पत्र दिये, उन प्रार्थना-पत्रों पर वे दस हजार युवक बुलाये गये। आश्चर्य की बात है कि उन दस हज़ार नवयुवकों में केवल बारह सौ इस योग्य निकले जो सैनिक कार्य कर सकते थे! समाज की दुर्बल अवस्था के और क्या प्रमाण हो सकते हैं!

एक सरकारी रिपोर्ट से पता चलता है कि सन् १९०० में जिन युवकों ने सेना में भर्ती होने का प्रयत्न किया था, उनमें से डाक्टरों ने ?८ प्रतिशत युवकों को किसी न किसी रोग में रोगी होने के कारण निकाल दिया। इसके बाद जो शेष रहे उनमें से परिश्रम कर सकने और कष्टों को सहन करने के योग्य केवल ५० प्रति शत युवकों को निर्वाचित् किया, इस प्रकार बहुत बड़ी संख्या में अयोग्य और रोगी कह कर वापस किये गये। सन् १९०८ में रंगरूटों की भर्ती के लिये जो कितने ही सहस्र जवान एकत्रित हुये थे, उनमें से ४२ प्रतिशत तो केवल इसलिये निकाल दिये गए कि वे विभिन्न सूक्ष्म बीमारियों के रोगी थे। अब सोचने की बात यह है कि यह अवस्था उन लोगों की है जो समाज में युवक, स्वस्थ, शक्तिशाली और निरोग समझे जाते हैं, क्योंकि सेना में भर्ती होने के लिये कोई रोगी, निर्बल युवक प्रार्थी नहीं हो सकता। मानव समाज की

यह अधोगति न किसी एक देश की है वरन् सारे संसार की है। संसार के मानव समाज में वे लोग इस दुरवस्था से किसी प्रकार पृथक हैं जो किसी शहर के नागरिक नहीं हैं, जो धनिक, पैसे वाले नहीं हैं अथवा जो देहातों, जंगलों और पर्वतों पर रहते हैं। कारण यह है कि इन लोगों का अधिकांश में उतना अस्वाभाविक जीवन नहीं होता जितना कि इनके विरुद्ध हैसियत वालों का।

इस दुरवस्था के कैसे-कैसे भीषण दृश्य हमारी आँखों के सामने से नित्य प्रति गुज़रा करते हैं, यह बात ध्यान पूर्वक देखने के योग्य है। पैदाइश और मृत्यु विभाग की रिपोर्टों से इस बात का पता चलता है कि मनुष्य की अवस्था लगातार कम होती जाती है अर्थात् ३५ और ४० वर्ष के उपरान्त ही स्त्री-पुरुषों की अधिकांश में मृत्यु हो जाती है। इन रिपोर्टों में एक बात बड़ी भयङ्कर है जो विशेष रूप से जानने के योग्य है। मरने वालों में बहुत बड़ी संख्या उन लोगों की है जो असमय और किसी रोग विशेष के कारण मर जाते हैं। इन मरने वाले व्यक्तियों के रोगों का अनुसन्धान करने से पता चलता है कि क्षयी रोग किस प्रकार समाज में तरक्की कर रहा है। हम आगे चल कर बतावेंगे कि क्षयीरोग जैसी बीमारियों के उत्पन्न होने के मांस जैसे अस्वाभाविक भोजन किस प्रकार कारण हो रहे हैं।

विलायत के डाक्टरों ने जो वहाँ समस्त स्कूलों के विद्यार्थियों के सम्बन्ध में रिपोर्टें प्रकाशित की हैं, वे कितनी हृदय विदारक हैं! उनका कहना है कि प्रति शत २५ विद्यार्थी ऐसे निकल जाते हैं जिनके रक्त ख़राब हो गए हैं, प्रति शत ८ ऐसे लड़के हैं जिनको हृदय की निर्बलता है और ४५ प्रति शत लड़के गले

लेकर छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े तक अपने भोज्य पदार्थ, उन पदार्थों की असली दशा में ही खाते हैं। यही अवस्था मनुष्य की भी है। मनुष्य का वही भोज्य पदार्थ है जिसको वह, उस पदार्थ की असली हालत में खा सकता है। इस अवस्था में मनुष्य कच्चा शाक और बनस्पति नहीं खा सकता, कच्चा मांस भी नहीं खा सकता, किन्तु बड़ी रुचि और स्वाद के साथ वह फलों को खा सकता है। इसलिए प्रत्येक अवस्था में यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य का भोजन फलों को छोड़कर और कुछ हो ही नहीं सकता।

यह तो बहुत साधारण बात है और बड़ी सुविधा के साथ समझी जा सकती है कि यदि मनुष्य मांसाहारी होता तो वह मांस को बिना पकाये और बिना उसमें कुछ मिलाये बड़े स्वाद के साथ खा सकता, किन्तु ऐसा नहीं है। कोई भी मनुष्य कच्चा मांस नहीं खा सकता और न किसी भी युग में मनुष्य कच्चा मांस खा सका है. इसलिए यह तो निश्चय ही है कि मांस मनुष्य का भोज्य पदार्थ नहीं हो सकता। यही अवस्था बनस्पति के सम्बन्ध में भी हैं। यदि मनुष्य वनस्पति और घास-पात बिना पकाए, कच्चा खा सकता, तो यह मानने में किसी को कुछ भी आपत्ति न होती कि मनुष्य वनस्पति या शाक-पात का भोजी है किन्तु ऐसा भी नहीं है। उसके खाने के एक मात्र पदार्थ फल हैं जिनको वह कच्चे-पक्के सभी रूपों और अवस्थाओं में रुचि और स्वाद के साथ खा सकता है। ऐसी अवस्था में मनुष्य को किसी भी तर्कना के साथ मांसाहारी सोचना या प्रमाणित करना न केवल मनुष्य-जीवन के साथ, वरन् प्रकृति के साथ अनर्थ करना है!

मनुष्य फलाहारी है, फल ही उसके जीवन का उपयोगी और प्राकृतिक भोजन है, इस बात को अनेक रूप से समझा जा सकता है। प्रत्येक जीव अपनी इन्द्रियों के द्वारा अपना

भोजन पहचानता है। भोजन की पहचान बताने वाली इन्द्रियों में जिह्वा और नाक है। जंगली जानवर दूर से ही, बिना देखे सुने, केवल नाक के द्वारा शिकार की गन्ध पाकर सचेत होता है और गन्ध के सहारे-सहारे वह चलकर अपने शिकार को खोजता है। इस प्रकार जब वह शिकार को आँख से देखता है तो बड़ी तेजी के साथ, उस पर झपटता है और बात की बात में लोहू-लुहान करके तुरन्त उसका मांस और रक्त खा-पीकर प्रसन्न होता है। उन जानवरों की नाक में ऐसी शक्ति होती है जिससे दूर से ही अपने शिकार की गन्ध उनको मालूम हो जाती है। नाक के द्वारा वे अपने शिकार के पास पहुँचते हैं और जिह्वा के द्वारा वे उसका स्वाद पाते हैं और प्रसन्न तथा संतोष अनुभव करते हैं। यही अवस्था प्रत्येक जीव की है। सभी जीवों को भोजन के सम्बन्ध में नाक. गंध के द्वारा अनेक बातों की जानकारी कराती है। मांसाहारी पक्षी बहुत दूरी से मांस की गन्ध को मालूम करते हैं। अनेक परतों के भीतर कोई खाने की वस्तु बँधी हुई रक्खी होगी किन्तु चूहे उसकी गन्ध से, उसे बड़ी आसानी के साथ ढूँढ़ लेंगे और उसके पास पहुँच जायँगे। चीटियाँ और चींटे, मीलों की दूरी से अपने भोजन की गंध पाते हैं और उसीके आधार पर वे वहाँ तक पहुँचते हैं। मनुष्य को भी प्रकृति ने इस प्रकार की शक्ति प्रदान की है परन्तु मनुष्य ने अपने इस गुण को नष्ट कर डाला है फिर भी उसका अस्तित्व बराबर काम करता है। किसी भी भोज्य पदार्थ की पहचान मनुष्य नाक के द्वारा सूँघ कर ही किया करता है। यदि कोई पदार्थ सड़कर या गलकर खराब हो गया है तो मनुष्य नाक के द्वारा सूँघकर ही जानता है। पशु जो वनस्पति खाते हैं, सूँघने के बाद ही खाना प्रारम्भ करते हैं। यदि उनके भोज्य पदार्थों में कोई रक्त इधर-

उधर छिड़का दे या मांस के टुकड़े डाल दे तो वे अपने खाने के सामान को छोड़ देंगे। इस प्रकार नाक और जिह्वा—दो इन्द्रियों के द्वारा प्रत्येक जीव को अपना भोजन मालूम होता है। यदि इन दोनों इन्द्रियों के द्वारा विचार किया जाय तो मालूम होगा कि किसी भी मनुष्य की नाक और जिह्वा को कच्चे मांस की गन्ध और उसका स्वाद रुचिपूर्ण न मालूम होगा। जो लोग बकरे का मांस खाते हैं, यदि उनसे कहा जाय कि जिन्दा बकरे के बदन में दाँत मार कर अपने मांसाहारी होने का प्रमाण दें तो किसी मांसाहारी मनुष्य का इसके लिए प्रस्तुत होना असम्भव है। यदि मनुष्य मांसाहारी होता तो कच्चे मांस के प्रति उसकी अरुचि और घृणा कभी भी न होती।

सर्वसाधारण में मांस के प्रति घृणा होती है, जो मांस खाते हैं, उनको भी, उस समय जब वे मांसाहारी न थे, घृणा थी, इसका कारण क्या है? किसी जीव को मार कर या बध कर और उसका मांस काट कर, खाने के लिए मांस तैयार किया जाता है, मारना और बध करना ही मानव प्रकृति का विरोधी है। प्रत्येक मनुष्य को स्वभावतः किसी का बध अच्छा नहीं लग सकता। जहाँ पर पशुओं का बध किया जाता है; वे स्थान सार्वजनिक रास्तों से हटकर, यथासम्भव एकान्त में बनाये जाते हैं। मांस बेचने की दूकानों पर नियम पूर्वक परदा पड़ा रहता है। इन सब बातों का कारण क्या है? वास्तव में यह बताना अनावश्यक है कि न तो बध-क्रिया हमारी आँखों और नासिका को रुचिकर प्रतीत हो सकती और न मांस ही। इसी आधार पर जब कोई मार्ग में मांस लेकर निकलता है तो कदाचित् उसे म्युनिसिपल बोर्डों के नियमानुसार उस मांस को बन्द करके या ढक कर के ले चलना पड़ता है। क्या यही सब बातें साबित करती हैं कि मांस, मनुष्य के भोज्य पदार्थों

में से है? जिसको देखकर हमारी आँख और नाक को इतनी घृणा होती है वह पदार्थ हमारे खाने के योग्य हो सकता है? किसी भी फल की सुगंध क्यों हमारे मन और मस्तिष्क को प्रसन्न कर देती है? फलों को देखकर ही उनके खाने के लिए क्यों हमारे मुँह में पानी आजाता है, और हमारी मानसिक प्रवृत्तियाँ क्यों ललचा उठती हैं? इसलिए न कि फल हमारे भोज्य पदार्थ हैं? प्रकृति ने फल खाने के योग्य मनुष्य को निर्माण किया है, इसलिए स्वभावतः उसको फलों से प्रेम होता है।

मनुष्य को प्राकृतिक मांस से घृणा होती है, इसलिए वह मांस नहीं खाता, किन्तु दूसरे से वह मांस खाना सीखता है। मांसाहारी लोगों से बातें करने पर बहुत से ऐसे लोग मिलते हैं जो कहते हैं कि पहले हम मांस न खाते थे और हमको बड़ी उससे घृणा थी किन्तु अमुक प्रकार की घटनाओं में पड़कर अथवा अमुक-अमुक व्यक्ति की संगति में पड़कर हम भी खाने लगे। इसी से कहा जाता है कि मनुष्य मांसाहारी नहीं है, वह मांसाहारी बनाया जाता है। दी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग (The New Science of healing) के लेखक ने अपनी पुस्तक में आँखों देखी एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक कुटुम्ब में एक हिरन पाला गया था। हिरन का भोजन वनस्पति है, यह बात सभी लोग जानते हैं, उस कुटुम्ब में एक कुत्ता भी पला था। कुत्ते को बने हुए मांस का रसा और कभी-कभी मांस भी मिला करता था। कुत्ते का यह भोजन, जब कभी उस हिरन के आगे रख दिया जाता तो उसको सूँघकर वह छोड़ देता। हिरन का खाना अलग वहीं पर दिया जाता। कुत्ता अपने आगे का भोजन समाप्त करके बचा हुआ भोजन का रसा जिह्वा से चाट-चाटकर खाया करता था। हिरन भी कभी-कभी कुत्ते के बर्तन में मुँह डाल देता और नाक सिकोड़ कर अपना मुँह खींच लेता।

कुछ दिनों के बाद देखा गया कि वह हिरन गोश्त के रसे को चाटने लगा। इस प्रकार धीरे-धीरे वह मांस के टुकड़े भी खाने लगा। यह अत्यन्त रहस्य पूर्ण बात थी। कुछ दिनों के बाद वह हिरन बीमार पड़ा और अक्सर बीमार रहने लगा। बहुत दिनों तक उसका जीवन रोगीला बीता और अन्त में वह मर गया।

ऊपर की इस घटना से प्रकट होता है कि किसी भी जीव को, उसके प्रकृति भोजन के विपरीत, भोजन करना सिखाया जा सकता है, किन्तु इसका फल, उसके लिए कभी हितकर नहीं हो सकता। उसको भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग घेरे रहेंगे और वह रोगी होकर निर्बल होजायगा। स्वभाव के विरुद्ध भोजन किसी को भी लाभ नहीं पहुंचा सकता। मानव जाति अपने स्वाभाविक भोजन को छोड़कर, दूसरे अप्रिय, अरुचिकर और प्रतिकूल भोजन करने के कारण उत्तरोत्तर रोग-ग्रसित होती जाती है। उसकी स्वाभाविक शक्ति नष्ट होगई है और वह बराबर निर्बल होती जाती है। मनुष्य अपने स्वाभाविक भोजन के द्वारा जितना शक्तिशाली और नीरोग रह सकता था, वह आज मनुष्य-जाति के लिए सपना है! अस्वस्थ और रोगी मनुष्य कभी भी पूर्ण आयु नहीं प्राप्त कर सकता। सर्वसाधारण का यह विश्वास अत्यन्त भ्रमात्मक है कि 'हमारी आयु निश्चित होती है, अवस्था का कोई परिमाण नहीं होता। हम स्वस्थ और आरोग्य रहकर बहुत बड़ी अवस्था तक जीवित रह सकते हैं। स्वस्थ और आरोग्य बनाने वाला एक मात्र हमारा, स्वाभाविक भोजन है, उसके प्रतिकूल भोजन, हमें सदा अस्वस्थ और रोगी बनावेगा, जिससे हमारे शरीर की जीवन-शक्ति निर्बल होकर, समय से पूर्व ही, हमारे जीवन को समाप्त कर देगी। इसी बात की पुष्टि के लिए एक बात और हम प्रमाण में देना चाहते हैं। जब डाक्टर या वैद्य किसी रोगी को

अच्छा करने में असमर्थ होजाते हैं और कोई उपाय उनके सामने शेष नहीं रह जाता तो वे अधिक समय तक के लिए उस रोगी को फलाहार कराते हैं और उसके दूसरे भोजन बन्द करा देते हैं। इस प्रकार का संयोग प्राप्त होने पर क्या कभी यह कोई सोचता है कि डाक्टर साहब ने अथवा वैद्य साहब ने ऐसा क्यों किया—क्या यह भी कोई चिकित्सा है? बात यह है कि स्वभाव के विरुद्ध भोजन प्राण-संहारक होता है। फिर भी मनुष्य के जिन्दा रहने का कारण औषधि की व्यवस्था है। ये औषधियाँ हमको, उस विषाक्त भोजन में भी जीवित रखने की चेष्टा करती हैं। किन्तु जब किसी रोगी को अच्छा करने में वे औषधियाँ समर्थ नहीं होतीं, तो उस रोग के पैदा करने की जड़ कुछ समय तक के लिए काट दी जाती है और ऐसा करने पर वह रोगी अच्छा हो जाता है। कारण क्या है? वे विषाक्त पदार्थ, जो रोग को बढ़ा रहे थे, वे बन्द कर दिए गए और नई जीवन-शक्ति पैदा करने वाले उसके स्वाभाविक पदार्थ फल खिलाने आरम्भ कर दिये गए, ऐसी अवस्था में रोगी को अच्छा हो ही जाना चाहिए।

हमारा वास्तविक भोजन क्या है, इस पर अब अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम प्रकृति के भिन्न-भिन्न अंगों पर ध्यान पूर्वक विचार करें तो हम सहज ही समझ सकते हैं कि प्रकृति ने हमारे भोजनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के फलों की व्यवस्था की है और हमारे इस स्वाभाविक भोजन के अनुकूल ही हमारे शरीर की रचना की है। हमारे पेट का आमाशय और पाचन-शक्ति इन फलों को ठीक-ठीक रूप में पचा सकती है। फलों को खा सकने और उनके पचा सकने के योग्य हमारे शरीरी-यंत्र का निर्माण करके प्रकृति ने मानों हमारे लिए फलों के खाने का उपदेश दिया है। यह तो सोचने की बात है

कि प्रकृति के इस आदेश को उल्लंघन करके भला हम किस प्रकार सुखी और स्वस्थ रह सकते हैं। हमारे जीवन का यही प्रायश्चित है कि हम जीवन-भर चिकित्सा करते रहें और एक दिन के लिए भी स्वास्थ्य के सच्चे सुख का अनुभव न कर सकें।

कुछ लोगों का यह भ्रम हो सकता है कि केवल फल खाकर हम कैसे जीवित रह सकते हैं। वास्तव में जो इस प्रकार का भ्रम करते हैं उनको इन बातों के तथ्य का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। हमारे भोजन की जो वर्तमान प्रणाली है, उसको हटा कर, यदि हम अपने आपको फलों के खाने का अभ्यासी बनावें तो हमारा अनुभव हमको बतावेगा कि फलों के आहार से जो शक्ति और पुरुषार्थ हमको प्राप्त होता है वह अस्वाभाविक किसी प्रकार के भोजन से सम्भव नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रकार के फल, मेवे, अन्न और कन्दमूल जो हमारी आँखों और नासिका को रोचक मालूम हों और खाने में स्वादिष्ट जान पड़ें, वे सब हमारे भोजन के सर्वोत्तम पदार्थ हैं। ये फल, संसार के सभी देशों में यथेष्ट रूप से पाए जाते हैं, और यदि कहीं पर इनकी पैदावार कम हो तो उनकी पैदावार बढ़ाई जा सकती है जिससे कि हमारे जीवन के साधन, सहज और अधिक परिमाण में प्राप्त हो सकें और यदि किसी देश विशेष में ये फल नहीं हो सकते तो समझ लेना चाहिए कि वह देश मानव प्रकृति के अनुकूल नहीं है, अतएव वह मनुष्यों के निवास करने के सर्वथा अयोग्य है। वास्तव में हमारा भोजन वही है जिसको खाने के लिए आग पर पकाने, नमक, मिर्च, मसालों के लगाने और तेल या घी में भूनने की आवश्यकता न पड़े। इस नियम के अनुसार विभिन्न फलों को छोड़कर और कोई चीज़ हमारे खाने के योग्य हो ही नहीं सकती।

—❀-:-❀—

हमारी भूल और उसका परिणाम

हमारे शरीर स्वस्थ्य और निरोग क्यों नहीं हैं—वे दुबले-पतले और जीर्ण-शीर्ण क्यों दिखाई देते हैं ? छोटे-छोटे बच्चे और नवयुवक नाज़ुक क्यों हो रहे हैं ? स्त्रियों के बदन पर रक्त और मांस क्यों सूखा हुआ है ? आदि-आदि प्रश्नों का एक ही उत्तर है, और वह यह कि समस्त मानव समाज रोगी है !

यदि हम अपनी दिनचर्या पर विचार करें तो मालूम होगा कि हमारा सम्पूर्ण जीवन रोगों का इलाज करने में ही व्यतीत होता है। हमें अपने जीवन का इतना बड़ा और कोई भी काम नहीं करना पड़ता, जितना कि हमें दवाओं का प्रबन्ध करना पड़ता है। पहले तो हमें स्वयं बीमारियों से छुट्टी नहीं है, कभी सिर में पीड़ा है, कभी कमर में दर्द है, किसी दिन हरारत है और किसी दिन बुखार है। ज़ुकाम जैसी बीमारियाँ तो बनी ही रहती हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रोगों से हमें छुट्टी नहीं मिलती, किन्तु उसी अवस्था में यदि ईश्वर ने संतान दी है और एक गृहस्थ का जीवन बिताना पड़ता है तो फिर कहना ही क्या है। सबेरे उठकर डाक्टर साहब के पास अथवा वैद्य जी के पास जाकर एक न एक मुसीबत रोना और दवा की शीशी या पुड़िया ले आना नित्य का नियम है। इसके बाद फिर खाना-पीना अथवा अन्य बातें हैं।

यह सब क्या है ? क्या हममें से कभी कोई इस अवस्था का विचार भी करता है ? क्या कभी हम लोग इन दुरवस्थाओं की ओर देखते और उनके कारणों की विवेचना भी करते हैं ?

और यदि करते हैं तो कौन इस बात का उत्तर देगा कि शहरों में जितने मकान, नागरिकों के रहने के लिए होते हैं, उनके ठीक चौथाई मकानों और इमारतों में दवाखाने, औषधालय होते हैं, क्यों ? इसका उत्तर यही न, कि शहरों का जीवन, नागरिकों की ज़िन्दगी इन दवाख़ानों और औषधालयों पर निर्भर है !

इन दवाख़ानों और औषधालयों की संख्या यहीं तक नहीं है। इनका अभिप्राय उन दवाख़ानों और औषधालयों से है जो किसी वैद्य या डाक्टर के व्यक्तिगत हुआ करते हैं। इनसे कहीं अधिक भयानक सार्वजनिक औषधालय हैं जो धर्मार्थ अथवा परोपकारार्थ हुआ करते हैं। इस प्रकार के औषधालयों की अधिक टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है बताना केवल यह है कि उनमें दवा लेने वालों की संख्या और उनका दृश्य रहस्यपूर्ण हुआ करता है। समाज रोगी है या स्वस्थ, हमारा जीवन रोग-मुक्त है अथवा रोगपूर्ण ? इन प्रश्नों का निर्णय करने के लिए इन धर्मार्थ औषधालयों का निरीक्षण करने की आवश्यकता है।

समाज का इस रोग ग्रसित अवस्था का विचार करते हुये एक विद्वान ने लिखा था—'मानव समाज रोगों का दिन पर दिन शिकार होता जाता है। मनुष्य के जीवन का रोगों से इतना घनिष्ट सम्बन्ध होगया है कि जीवन का बहुत बड़ा अंश इसी उलझन में चला जाता है। समाज की इस अवस्था का परिणाम साधारण लोगों, गृहस्थों पर बहुत भयंकर मिलता है। यह अवस्था इस समय उतनी शोचनीय नहीं है जितनी कि भविष्य में उसके शोचनीय हो जाने का निश्चय है। रोगों की इस बढ़ती हुई दुरवस्था का एक अनुचित कारण बहुत अधिक संख्या में डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों का होना है।"

समाज की यह अवस्था सचमुच विचारणीय है। संसार के विद्वानों ने समाज की अवस्था को अनुभव किया है। और उसके कारणों पर भलीभांति विचार किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मुक़दमेबाज़ी के बढ़ जाने का कारण वकीलों की संख्या है, राजनीतिक जीवन को फैलाने और बढ़ाने के कारण समाचार पत्र हैं, व्यभिचार को बढ़ाने वाली वेश्याएँ हैं, भिखमंगों को पैदा करने वाले, दाता हैं, और रोग तथा बीमारियों के बढ़ने का कारण दवाखाने, औषधालय और अस्पताल हैं। ये दवाखाने और अस्पताल किस प्रकार रोगों की वृद्धि करते हैं, संक्षेप में यहाँ पर कुछ प्रकाश डालना है। हम ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकते, जिसमें हमको दंड मिल सकता है, किन्तु जब हमको विश्वास होता है कि उस दंड से हम मुक्त हो सकते हैं तो उस अपराध के करने में जो डर होता है, वह हमारे हृदयों से निकल जाता है। चोरी करने से दंड मिलता है, इसीलिए हम चोरी करने से डरते हैं किन्तु जब हम यह जान लेते हैं कि वकील की पैरवी से हम बचाए जा सकते हैं, तो फिर चोरी करने का हमें कौन-सा डर हो सकता है। यह निश्चित है कि रोग या बीमारी का उत्पन्न होना, हमारे ही जीवन का कोई न कोई अपराध है और उस अपराध का दंड स्वरूप यह रोग है, तो फिर उस रोग से किसी को बचाने का प्रयत्न करना यह साबित करता है कि अपराध करने वालों की संख्या बढ़ाई जा रही है। हम स्वभाव और प्रकृति के विरुद्ध खाना खाकर बीमार होते हैं और जब बीमार होते हैं तो दवाओं की सहायता से उससे मुक्ति पाने की चेष्टा करते हैं, मुक्ति पाने का यह ढंग यदि न होता तो एक बार उसका कष्ट भोगकर हम दूसरी बार कभी उस अपराध का साहस नहीं कर सकते थे। जो लोग, धर्मार्थ औषधालय खोलते

हैं वे परोक्ष में धर्म करते हैं किन्तु समाज के लिए वह हानिकर ही होता है। जिन कोठो वालों के दरवाज़ों पर भिखमंगों की भीड़ लगती है, और वहाँ पर उनको मुट्ठी-मुट्ठी अनाज मिलता है, वहाँ पर उनके साथ उदारता और दया होती है परन्तु इसका फल यह होता है कि उन भिखमंगों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है इस प्रकार अपरोक्ष में समाज का पतन होता है।

मनुष्य का वास्तविक आहार क्या है, यह बात पीछे बताई जा चुकी है, इस स्वाभाविक आहार और प्राकृतिक भोजन को छोड़ देने के कारण आज मनुष्य-जाति की यह अधोगति हुई है। यदि ये रोग जीवन के कोई आवश्यक अंग होते तो वह मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियों के लिए भी तो होने चाहिये थे। किन्तु पशुओं, पक्षियों, जंगली जानवरों, कीड़ों-मकोड़ों आदि के लिए कभी किसी दवा की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनको बीमारियाँ नहीं होतीं और न उनको बीमारियों के लिए दवाखाने तथा औषधालय ही खुले हैं। कोई भी बीमारी, जो संयोगवश पैदा होती है, वह अपने आप अच्छी भी होती है। फोड़ा-फुन्सी से लेकर, तरह-तरह की बीमारियाँ और भयंकर से भयंकर रोग अपने आप सेहत होना चाहिए, यह प्रकृति का नियम है। यहाँ पर एक रोगी का उदाहरण देना आवश्यक जान पड़ता है। एक आदमी की अवस्था लगभग अड़तीस वर्ष की थी, पानी पीने में उसके दांतों में पानी लगता था। वह आदमी कुछ पैसे वाला था। उसने भिन्न-भिन्न वैद्यों की दवा की और अंत में एक प्रसिद्ध दांत बनाने वाले (Dentist) के पास गया। उसने दांतों को देख कर बताया कि दांतों पर जो enamel (एक प्रकार की पालिश) लगी होती है, उसके निकल जाने से पानी लगने लगता है। उस आदमी के पूछने पर उसने

बताया कि यह पानी का लगना बन्द हो सकता है और इसके लिए उसे क़रीब पैंतीस रुपये ख़र्च करने का अन्दाज़ बताया। उस आदमी ने वैसा ही किया किन्तु उतने रुपये खर्च होजाने के बाद उसका पानी लगना बन्द न हुआ, इसके बाद उस आदमी ने अधिक रुपये खर्च करना उचित न समझा। उसने दवा करना बन्द कर दिया। कुछ दिनों के बाद उसे कुछ ऐसे आदमियों से बातें करने को मिलीं, जिनके दांतों में पानी लगने की बीमारी हो चुकी थी। इन बातों के साथ-साथ, उन लोगों ने यह भी बताया कि यह पानी का लगना अपने आप बन्द भी होगया। यह बाद सुनकर उस आदमी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने एक अंगरेज दांत बनाने वाले से बातें की तो उसने बताया कि—दांतों पर जो enamel अर्थात् एक प्रकार की पालिश होती है उसके निकल जाने से दांतों में पानी लगता है यह enamel अपने आप फिर दांतों पर पैदा हो जाती है, इसके निकल जाने का कारण खाने-पीने का व्यतिक्रम होता है। चिकित्सा के द्वारा कुछ जल्दी वह पैदा होती है।

यही अवस्था प्रत्येक रोग की है। कोई भी रोग, कुछ न कुछ कारण पाकर पैदा होजाता है और अपने आप सेहत हो जाता है। यह अवस्था उस समय होती है जब प्राकृतिक जीवन बिताया जा सकता है। समाज ने अस्वाभाविक जीवन में पदार्पण करके इतना बड़ा भार अपने सिर पर ले लिया है जिसको देखकर सहज ही घृणा होती है। हमें अपने जीवन को समझने और उसको ठीक-ठीक बिताने के लिये न जाने कितनी पुस्तकें और ग्रन्थों को पढ़ना पढ़ता है परन्तु इन पुस्तकों और ग्रन्थों का अन्त नहीं होता। इन पुस्तकों और ग्रन्थों में से एक-एक पुस्तक के भीतर न जाने कितने नियम कितने उपनियम होते हैं। इन पुस्तकों और ग्रन्थों एवम् उनके नियमों और उप-

नियमों का याद करना तो दूर रहा, एक बार पढ़ डालना ही असंभव हो गया है। यह जीवन भी क्या एक बला है! व्यर्थ का यह भार देखकर जी ऊब उठता है। इन सब व्यर्थ आडम्बरों की क्या आवश्यकता है। प्रकृति ने हमारे जीवन को एक बला एवम् आडम्बर के रूप में नहीं निर्माण किया। यह जीवन इतना सहज और सरल है जितना कुछ भी सहज और सरल हो सकता है। जिसने हमें जीवन दिया है, उसने हमको उस जीवन को आवश्यकतानुसार बिताने के लिए स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ प्रदान की हैं। प्रकृति की प्रदान की हुई ये स्वाभाविक प्रवृतियाँ, हमारे जीवन में, वहीं पर नष्ट हो जाती हैं जब हमारा जीवन प्रकृति के विरुद्ध प्रवाहित होता है। उसी अवस्था में, हमको अपना जीवन बिताने के लिये बैलगाड़ियों में लादी जाने वाली इन पोथियों की जरूरत होती है। किन्तु क्या इनसे कुछ वास्तव में उपकार भी होता है? हमें जल कैसा पीना चाहिए, हमें किस प्रकार की वायु का सेवन करना चाहिए? कौन सा भोजन हमें खाना चाहिए और कहाँ कैसे स्थानों में हमें रहना चाहिए, यह सब सीखते-सीखते हम बाल्यकाल से बुढ़ापे तक पहुँचते हैं, किन्तु यदि कोई पूछे कि उससे फ़ायदा क्या उठाते हैं तो कदाचित् यही उत्तर देना पड़ेगा कि कुछ नहीं?

हमें अपने जीवन के लिए जिन-जिन बातों की आवश्यकता है उनको ठीक उसी रूप में प्राप्त करने के लिए प्रकृति ने सभी प्राणियों को शक्तियाँ प्रदान की हैं और समूचे विश्व में उनकी व्यवस्था की है। फिर उनको बताने और पुस्तकों के पन्ने रटाने की क्या जरूरत है और यही कारण है कि मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी प्राणी को उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती जंगलों और बन-पर्वतों पर रहने वाले जानवर तथा पशु-पक्षी पीने के

लिये सुन्दर प्रवाहित जलाशयों नदियों तथा झरनों का पानी पीते हैं, खाने के लिये अपने-अपने स्वभाव के अनुकूल भोजन प्राप्त करते हैं और अपने रहने के लिये सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था करते हैं। यही तो जीवन है। फिर इस जीवन को संचालित करने के लिए हमें जीवन-भर क्यों रोना पड़ता है?

हमारे स्वास्थ्य का रोना इतना विस्तार पा चुका है कि विशेष रूप से उसके बताने की आवश्यकता नहीं है। समाज को रात-दिन सदा-सर्वदा एक न एक बीमारी के कष्ट में दुखी रहना पड़ता है। ऐसी अवस्था में भी यदि कोई इस दुरवस्था से अपरिचित रहे हों तो उनको चाहिये कि वे समाचारपत्र, मासिक पत्र तथा भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों को उलट कर देखें तो उनको उनमें देखने को मिलेगा कि समाज के बिगड़े हुए स्वास्थ्य, बढ़ते हुये स्वाभाविक और अस्वाभाविक रोग किस-किस प्रकार के हैं और उनके कारण समाज की शक्ति कितनी निर्बल हो गई है! चिकित्सा करते-करते विज्ञापन दाताओं और इश्तहारबाजों ने तो समाज का जीवन ही अश्लील कर डाला है।

थोड़े से संतोष की बात यह है कि समाज में कुछ दूरदर्शी विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वे सोचने लगे हैं कि इस दुरवस्था का मूल कारण क्या है। यहाँ पर भिन्न-भिन्न लोगों के विचारों और रिपोर्टों के उद्धरण देकर इस बढ़ती हुई दुरवस्था पर विशेष रूप से प्रकाश डालना चाहते हैं। लार्ड केलवन ने इस स्थिति की मीमांसा करते हुए लिखा है—

"मैं बहुत समय के पश्चात्, इस नतीजे पर पहुंच सका हूं कि हमारे शरीर में जो रोग उत्पन्न होकर हमारे जीवन के

सुखों को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं, वे प्रायः सभी हमारे अस्वाभाविक भोजनों के द्वारा उत्पन्न होते हैं।"

यह बात सभी को मालूम है कि जीवन का सारा सुख, स्वास्थ्य पर निर्भर है। इस स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिये समाज में आये दिनों कौन-से प्रयत्न नहीं किये जा रहे हैं ? परन्तु वे निष्फल हो जाते हैं, अथवा यों कहा जाय कि मनुष्य के जीवन में जो शक्ति और पुरुषार्थ होना चाहिये, वह नहीं दिखाई देता। दक्षिणी अफ्रिका में दस हजार मैञ्चेस्टूल युवकों ने देश और सरकार की सेवा करने के लिये प्रार्थना-पत्र दिये, उन प्रार्थना-पत्रों पर वे दस हजार युवक बुलाये गये। आश्चर्य की बात है कि उन दस ह.जार नवयुवकों में केवल बारह सौ इस योग्य निकले जो सैनिक कार्य कर सकते थे ! समाज की दुर्बल अवस्था के और क्या प्रमाण हो सकते हैं !

एक सरकारी रिपोर्ट से पता चलता है कि सन् १९०० में जिन युवकों ने सेना में भर्ती होने का प्रयत्न किया था, उनमें से डाक्टरों ने २८ प्रतिशत युवकों को किसी न किसी रोग में रोगी होने के कारण निकाल दिया। इसके बाद जो शेष रहे उनमें से परिश्रम कर सकने और कष्टों को सहन करने के योग्य केवल ५० प्रति शत युवकों को निर्वाचित् किया, इस प्रकार बहुत बड़ो संख्या में अयोग्य और रोगो कह कर वापस किये गये। सन् १९०८ में रंगरूटों की भर्ती के लिये जो कितने ही सहस्र जवान एकत्रित हुये थे, उनमें से ४२ प्रतिशत तो केवल इसलिये निकाल दिये गए कि वे विभिन्न सूक्ष्म बीमारियों के रोगी थे। अब सोचने की बात यह है कि यह अवस्था उन लोगों की है जो समाज में युवक, स्वस्थ, शक्तिशाली और निरोग समझे जाते हैं, क्योंकि सेना में भर्ती होने के लिये कोई रोगी, निर्बल युवक प्रार्थी नहीं हो सकता। मानव समाज को

यह अधोगति न किसी एक देश की है वरन् सारे संसार की है। संसार के मानव समाज में वे लोग इस दुरवस्था से किसी प्रकार पृथक हैं जो किसी शहर के नागरिक नहीं हैं, जो धनिक पैसे वाले नहीं हैं अथवा जो देहातों, जंगलों और पर्वतों पर रहते हैं। कारण यह है कि इन लोगों का अधिकांश में उतना अस्वाभाविक जीवन नहीं होता जितना कि इनके विरुद्ध हैसियत वालों का।

इस दुरवस्था के कैसे-कैसे भीषण दृश्य हमारी आँखों के सामने से नित्य प्रति गुज़रा करते हैं, यह बात ध्यान पूर्वक देखने के योग्य है। पैदाइश और मृत्यु विभाग की रिपोर्टों से इस बात का पता चलता है कि मनुष्य की अवस्था लगातार कम होती जाती है अर्थात् ३५ और ४० वर्ष के उपरान्त ही स्त्री-पुरुषों की अधिकांश में मृत्यु हो जाती है। इन रिपोर्टों में एक बात बड़ी भयङ्कर है जो विशेष रूप से जानने के योग्य है। मरने वालों में बहुत बड़ी संख्या उन लोगों की है जो असमय और किसी रोग विशेष के कारण मर जाते हैं। इन मरने वाले व्यक्तियों के रोगों का अनुसन्धान करने से पता चलता है कि क्षयी रोग किस प्रकार समाज में तरक्की कर रहा है। हम आगे चल कर बतावेंगे कि क्षयीरोग जैसी बीमारियों के उत्पन्न होने के मांस जैसे अस्वाभाविक भोजन किस प्रकार कारण हो रहे हैं।

विलायत के डाक्टरों ने जो वहाँ समस्त स्कूलों के विद्यार्थियों के सम्बन्ध में रिपोर्टें प्रकाशित की हैं, वे कितनी हृदय विदारक हैं! उनका कहना है कि प्रति शत २१ विद्यार्थी ऐसे निकल जाते हैं जिनके रक्त ख़राब हो गए हैं, प्रति शत ८ ऐसे लड़के हैं जिनको हृदय की निर्बलता है और ४५ प्रति शत लड़के गले

फलाहार क्यों सर्वोत्तम है ?

भोजन के प्रत्येक पदार्थ की वैज्ञानिक विवेचना ?

मनुष्य के खाने-पीने के सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में यथा-स्थान कुछ बातें बताई गई हैं किन्तु उनका क्रम और उचित उपयोग अभी तक नहीं बताया गया। यहाँ पर भोजन की वैज्ञानिक विवेचना करके यह निश्चय करना है कि मनुष्य के अन्य भोजनों की अपेक्षा फलों का सेवन क्यों सर्वोत्तम है !

प्रारम्भ में मनुष्य के शरीर की उपमा रेलगाड़ी के इंजन के साथ दी जा चुकी है। मनुष्य के शरीर-यंत्र को सुगमता से समझने के लिए यहाँ पर फिर उसी इंजन का आश्रय लिया जाता है। इञ्जन जब काम करता है, तो उसके पहले ही उसमें गर्मी उत्पन्न करने को आवश्यकता होती है जिसके लिए उसमें कोयला और पानी का प्रयोग किया जाता है। दूसरी बात उसमें काम करने से कल और पुर्ज़े = सभी छोटे और बड़े घिसते रहते हैं, इसके लिए ऐसी चीज़ों का प्रयोग करना पड़ता है जिनसे उनकी मरम्मत होती रहती है। तीसरे उसके कल-पुरज़ों को सहज ही गतिमान बनाने के लिए तेल की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य के शरीर में पेट इंजन है, इस इंजन के द्वारा ही सारे शरीर का काम होता है। पेट में जो भोजन पहुँचता है, उसकी गर्मी शरीर में शक्ति, उत्तेजना उत्पन्न करती है, और इस अवस्था में ही शरीर कार्य करने के

योग्य होता है। इसके बाद, कार्य करने से शरीर के अंग-प्रत्यंग जो घिसते रहते हैं और आगे के लिए अपनी शक्ति का ह्रास करते हैं, उसको पूर्ण करने के लिए हमें आवश्यकता होती है। तीसरी बात, जिस प्रकार इंजन के कल-पुर्जों के लिए तेल अथवा चिकनाई की ज़रूरत होती है, उसी प्रकार हमारे शरीर के लिए भी ज़रूरत होती है, इन तीन बातों के लिए हमें शरीर का प्रबन्ध करना पड़ता है। शरीर की ये तीनों आवश्यकताएँ हमारे भोजन से ही पूर्ण होती हैं। इसलिए हमें उस भोजन की आवश्यकता होती है जिससे हमारे शरीर की ये तीनों आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें।

हमारे शरीर की इन तीन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता है, इस बात का निश्चय करके हमें आगे बढ़ना चाहिए। उन आवश्यकताओं में सबसे पहले और सबसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है। काम के कारण शरीर के अंग-प्रत्यंगों को जो क्षति पहुँचती है, उसको दूर करने लिए पानी ही उपयोगी होता है। इसके पश्चात् शरीर में शक्ति उत्पन्न करने के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता होती है उसको डाक्टरी में प्रोटीन करते हैं। यह प्रोटीन वास्तव में नाइट्रोजन है जो अंडे की सफेदी, दूध की सफेदी और गेहूं के लवाब आदि में मिलता है। तीसरी आवश्यकता नमक की है, इसके द्वारा शरीर के अवयवों को अनेक प्रकार की सहायता मिलती है। इसके साथ ही उन तत्वों की भी आवश्यकता होती है जो तेल तथा चीनी का अंश पैदा करते हैं।

शरीर की इन तीन प्रकार की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए चार प्रकार के तत्वों की जरूरत पड़ती है। पानी,

प्रोटीन, नमक और तेल-चीनी। ये चार प्रकार के तत्व प्राप्त करने के लिए हमें भोजन की आवश्यकता है। इस विवेचना से स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है कि मनुष्य का भोजन वही है जो इन तत्वों को प्रदान कर सकता है। इन तत्वों के प्रदान करने वाले भोज्य पदार्थों के सम्बन्ध में, आगे चलकर अलग-अगल विश्लेषण किया जायगा। किन्तु उसके पहले इन तत्वों के सम्बन्ध में कुछ बातों का और लिख देना आवश्यक जान पड़ता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, आहार में पानी को सबसे अधिक परिमाण में आवश्यकता है। शरीर-विज्ञान के विद्वानों ने निश्चय किया है कि शरीर में पानी का अंश इकहत्तर प्रति शत है। शेष उन्तीस फीसदी में बाक़ी वस्तुएँ हैं। इससे ज़ाहिर होता है कि पानी शरीर के लिए कितना आवश्यक है। इसके बाद प्रोटीन की आवश्यकता होती है। प्रोटीन ही शरीर में शक्ति और पुरुषार्थ उत्पन्न करता है। जिन भोज्य-पदार्थों में इसकी कमी होती है, उनके खाने से मनुष्य की शक्ति दिन पर दिन क्षीण होती जाती है। जिनको इस बात का ज्ञान नहीं होता और ज्ञान न होने से बिना इस बात को समझे-बूझे जो लोग भोजन खाया करते हैं, वे अपनी समझ में भोजन करते हैं और संतोषजनक परिमाण में करते हैं, परन्तु उससे उनको वह लाभ नहीं होता जो वास्तव में उनको होना चाहिए। इसका फल यह होता है कि खाते-पीते रहने पर भी शरीर की शक्ति क्षीण होती जाती है और उनके शरीर का पुरुषार्थ, अव्यक्त रूप से अदृश्य होता जाता है।

शरीर-शास्त्र के विद्वानों ने इस प्रोटीन को कितना अधिक महत्व दिया है, इसको प्रकट करने के लिए कुछ सम्मतियाँ दे

देना यहाँ पर आवश्यक है। प्रोटीन की उपयोगिता और शरीर में उसकी आवश्यकता का अनुभव करते हुए एक विद्वान ने लिखा है —

"हमारे शरीर के लिए प्रोटीन बहुत आवश्यक है, नित्य के कार्यों में जो शक्ति हमारी व्यय होती है, उसको हम प्रोटीन के द्वारा प्राप्त करते हैं। इसलिए यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा कि प्रोटीन, हमारी जीवन-शक्ति है। शरीर के लिए आवश्यक इन तत्वों से लाभ उठाकर जीवन न केवल सुख के साथ बिताया जा सकता है वरन् मनुष्य बहुत दिनों तक जीवित रह सकता है।"

शरीर-विज्ञान के एक प्रोफ़ेसर साहब ने लिखा है कि "प्रोटीन हमारे शरीर के लिए बहुत आवश्यक है, इसलिए जिन पदार्थों में यह प्रोटीन अधिक पाया जाता है, वही वास्तव में हमारे खाने के पदार्थ हैं, जिनमें प्रोटीन की मात्रा नहीं होती, उनका खाना, शरीर के लाभ के लिए व्यर्थ है।"

प्रोटीन की आवश्यकता पर भिन्न-भिन्न लोगों ने विभिन्न रूप से अनुभव किया है, और प्रत्येक अवस्था में लोगों ने इसको शरीर के लिए आवश्यक पाया है। एक डाक्टर साहब ने लिखा है—शरीर में जिन तत्वों की आवश्यकता होती है, उनमें प्रोटीन सब से अधिक आवश्यक और उपयोगी है। हम नमक के बिना काम चला सकते हैं, परन्तु प्रोटीन के बिना तो हमारा जीवन ही निकम्मा और मुर्दा हो जाता है। प्रोटीन हमारे लिए बहुत आवश्यक है। उसके बिना हमारा काम चल सकना असम्भव है।

इन सम्मतियों से पता चलता है कि हमारे शरीर को शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए जिस तत्व की आवश्यकता

होती है वह प्रोटीन है और वह किस प्रकार हमारे लिए आवश्यक है।

यह तो निश्चय हो गया कि पानी के अतिरिक्त प्रोटीन, तेल, चीनी और नमक की जरूरत है, परन्तु इन तत्वों का कितना-कितना परिमाण हमारे लिए आवश्यक है। क्योंकि उसका परिमाण अलग-अलग न मालूम होने से कौन भोजन कितना हमारे लिए आवश्यक है, इसका क्रम समझना कठिन है। इस लिये इन तत्वों का कितना किसका परिमाण हमारे भोजन में होना चाहिये, इसके सम्बन्ध में शरीर-शास्त्र के सभी विद्वानों और डाक्टरों ने जिसे स्वीकार किया है, उसी के आधार पर यहां उल्लेख किया जाता है। मि० ड्यू ली नामक एक प्रसिद्ध विद्वान ने लिखा है कि एक साधारण आदमी को अपने शरीर की रक्षा के लिए इस प्रकार के पदार्थों का प्रतिदिन भोजन करना चाहिए जिनमें उसे सामान्यतः प्रोटीन साढ़े चार औंस, चिकनाई तीन औंस, चीनी चौदह औंस और नमक एक औंस प्राप्त हो सके। इस प्रकार रोज एक साधारण मनुष्य को अपने भोजनों से साढ़े बाईस औंस इन तत्वों का मिलना चाहिये। जिससे वह सदा शक्तिशाली, निरोग और अधिक आयु वाला हो सकेगा।

अब, हमें मनुष्य के वर्तमान भोजन के पदार्थों पर विचार करना चाहिए और हिसाब लगाना चाहिये कि उनमें कितना अंश किसका पाया जाता है। इसके लिये पहले हमें यह जानना चाहिये कि आजकल भोजन दो प्रकार से प्राप्त किये जाते हैं, वनस्पतिक और पाशविक! वानस्पतिक वे हैं जो हमको वनस्पति से प्राप्त होते हैं और पाशविक वे हैं जो हमको पशुओं से प्राप्त होते हैं। वनस्पति के द्वारा प्राप्त होने वाले पदार्थ इस प्रकार हैं:—

अनाज—गेहूं, जौ, मकाई, चना, चावल, ज्वार और बाजरा आदि।

दाल—मटर, चना, सेम, उरद, मूँग आदि।

सब्ज़ी-तरकारी—आलू, प्याज, गोभी, गाजर, टमाटो, मूली, सलजम आदि।

फल—बादाम, सेव, नास्पाती, केला, अंगूर, अंजीर, खजूर, मेवा, नारंगी और ख़ूबानी आदि।

पाशविक भोजन—मांस, मछली, पनीर, चेड, चूज़ा, गाय का मांस, भेड़, बकरी, सुअर का मांस और दूध आदि।

इन पदार्थों में से ही भिन्न-भिन्न प्रकार के खाने के सामान तैयार होते हैं। इन सब के साथ नमक का प्रयोग होता है, नमक वास्तव में न तो वानस्पतिक है और न पाशविक। वह तो खनिज पदार्थों में से है जो पृथ्वी से हमको प्राप्त होता है। इस नमक के अतिरिक्त, खनिज पदार्थों में और कोई भी पदार्थ हमारे खाने के उपयोग में नहीं आता। कुछ लोगों का यह भी मत है कि खनिज पदार्थ कोई भी हमारे खाने के प्रयोग में नहीं आने चाहिये। इसी आधार पर वे नमक का भी विरोध करते हैं। इस विरोध में वे लोग न केवल एक आग्रह उपस्थित करते हैं, वरन् अनेक प्रकार से उसे हानिकारक और व्यर्थ प्रमाणित करते हैं। यहाँ पर महात्मा गाँधी की एक बात विशेष रूप से लिखने के योग्य है। महात्मा जी स्वयं नमक के विरोधियों में हैं। एक समय की बात है, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरी बाई किसी बीमारी से परेशान थीं। बाई जी ने उस बीमारी की चिकित्सा करने की भावना से महात्मा जी से बीमारी के

सम्बन्ध में बातें कीं। महात्मा जी ने कुछ सोच कर किसी चिकित्सा आदि की तो व्यवस्था न की और बाई जी से कहा कि तुम नमक खाना छोड़ दो। महात्मा जी की इस बात पर बाई जी को संतोष न हुआ, उन्होंने समझा कि महात्मा जी उनसे हँसी कर रहे हैं, बाई जी ने यह भी समझा कि नमक भला कैसे छोड़ा जा सकता है जब कि मनुष्य के खाने के लिए सभी प्रकार के भोजन बिना नमक के नहीं बन सकते। उन्होंने महात्मा जी से कहा— "नमक खाना तुम्हीं छोड़ दो।" महात्मा जी ने मुस्करा कर स्वीकार कर लिया, बाई जी की बात पर महात्मा जी ने नमक का प्रयोग छोड़ दिया और आज अनेक वर्ष हो गए पर उनका नमक अब भी छूटा है।

नमक हमारे लिए हानिकारक है अथवा लाभकारक, यह विवेचना करना इस लेख का अभिप्राय नहीं है। खनिज पदार्थों के साथ नमक का भी लोग विरोध करते हैं। केवल इतना ही यहाँ पर प्रदर्शन करना मन्तव्य था। ऊपर की पंक्तियों में वानस्पतिक और पाशविक जो दो प्रकार के पदार्थ गिनाए गये हैं, उनमें किसमें, कितना भोजन का अंश होता है, इसको ठीक-ठीक प्रदर्शित करने के लिए एक छोटे से नक़शे में उनका निम्नलिखित विवरण दिया जाता है और बताया जाता है कि उनमें से किस में किस-किस तत्व का कितना-कितना अंश पाया जाता है :—

पदार्थ और उनमें प्रत्येक तत्त्व के अलग-अलग परिमाण ।

पदार्थों के नाम	प्रोटीन की मात्रा	चिकनाई की मात्रा	चीनी और मैदा की मात्रा	नमक की मात्रा	पानी की मात्रा	भोजनांश का ठोस योग
दाल	२५·१	२·३	५५·८	२·८	१·२	८५·६
मेवा	१८·५	५१·६	६·६	२·४	१६·२	८२·२
अनाज	१०·६	२·३	७२·५	२·१	१२·०	८७·८
सूखा मेवा	४·४	१·६	६८·७	२·४	१६·७	७७·१
सब्जीतरकारी	१·४	०·३	८·६	०·८	८७·८	११·१
ताज़ा फल	१·०	०·६	१६·०	०·६	८१·४	१८·५
पनीर	२८·४	३१·०	०·०	४·५	३६·०	६४·०
मांस	१७·०	१७·९	०·०	२·१	६२·९	३७·०
अंडे	१४·०	१०·५	०·०	१·५	६४·०	२६·०
मछली	११·६	१·२	०·०	१·२	८६·१	१·३
दूध	४·०	३·९	५·२	०·८	८६·५	११·८

ऊपर का यह नकशा स्पष्ट प्रकट करता है कि किस पदार्थ में किसका, कितना अंश होता है। पहले ही बताया जा चुका है कि हमको भोजन से ही जीवन-शक्ति प्राप्त होती है, वह जीवन-शक्ति प्रोटीन, चिकनाई, चीनी और नमक है, ये चारों हो तत्व मिलकर हमारे शरीर के लिए जीवन-शक्ति प्रदान करते हैं। हमें अपने प्रति दिन के जीवन के लिए चारों वस्तुएँ २२½ औंस के परिमाण में मिलनी चाहिए अर्थात् ४½ औंस प्रोटीन, ३ औंस चिकनाई, १४ औंस चीनी व मैदा और १ औंस नमक। अब यह समझाने की अवश्यकता नहीं है कि हमारा वही भोजन है जिसमें ये चारों वस्तुएँ हमारे शरीर के लिए प्राप्त होती हैं और ऊपर के नक़शे में यह विदित हो जाता है कि कौन पदार्थ अपने भीतर कितना-कितना अंश, उन वस्तुओं का रखता है।

मांसाहारी मनुष्यों को भलीभाँति यह समझने की आवश्यकता है कि वे जो भोजन पशुओं से प्राप्त करते हैं, उनमें दूध को छोड़कर कोई ऐसा नहीं है जो मनुष्य को भोजनांश देने में पूर्ण रूप से समर्थ हो। मांस-भोजन में प्रोटीन होता है, नमक होता है और तेल का अंश भी होता है परन्तु उनमें चीनी और मैदा का अंश बिल्कुल नहीं होता। अब यह बात विचारणीय है कि प्रोटीन, तेल और नमक ही मिलकर क्या हमारे शरीर को हृष्ट पुष्ट और शक्तिशाली बना रख सकते हैं। यहाँ पर भोजन के सम्बन्ध में किसी धार्मिक विवेचना से काम नहीं लिया जा रहा और न किसी धार्मिक बात की आड़ लेकर यही कहा जा रहा है कि मांस और मछली खाना हमारे लिए धर्म-विरुद्ध है, इसलिए वह हानिकारक है। भोजन का वैज्ञानिक विवेचन क्या है और विज्ञान के सामुदायिक अनुसन्धान के आधार पर हमें क्या खाना चाहिये, क्या नहीं, इस विवेचन के बाद भी

उसको सोचने-विचारने और संसार में आँखें खोल कर देखने की आवश्यकता है। समाज के स्त्री-पुरुषों और बच्चों के स्वास्थ्य, उनकी शक्ति और आरोग्यता को, इस विवेचना की परीक्षा द्वारा आज़माने की ज़रूरत है। इस प्रकार की पूरी छान बीन के साथ हमें अंत में निश्चय करना चाहिए कि हमारा वास्तविक भोजन क्या है और वह हमारे सुख, स्वास्थ्य, बल-पौरुष की किस प्रकार रक्षा करके हमें बहुत दिनों तक जीवित रख सकता है। इसलिए कि समाज में यह समझने वालों की कमी नहीं है जो समझते हैं कि हमारी आयु तो ईश्वर के घर से निश्चित है। यह बात ग़लती है। और इस प्रकार की धारणा रखने वालों को यह जान लेना चाहिये कि हमारा जीवन हमारे ही हाथों में है। जो लोग सदा रोगी और अस्वस्थ रहा करते हैं उनकी जीवन शक्ति, धीरे-धीरे क्षीण होती रहती है और अन्य जनों की अपेक्षा उनका जीवन बहुत थोड़ा हुआ करता है। जो जितना ही रोगी है, उतनी ही उसकी अवस्था छोटी है, जो जितना ही स्वस्थ और आरोग्य है वह उतना ही अधिक अपनी अवस्था रखता है, यह सब लोगों को ध्यान पूर्वक समझ लेना चाहिए और किसी प्रकार के भ्रम और ग़लत विचारों में पड़कर, अपने हाथों, अपना जीवन नष्ट न करना चाहिए।

हमारे शरीर के लिए प्रोटीन, तेल, चीनी और नमक का जो क्रम ऊपर बताया गया है उसी क्रम से उनकी आवश्यकता होती है, यदि उनमें कोई भी एक न मिले तो समझ लेना चाहिये कि हमारे शरीर में कोई न कोई व्यतिक्रम पैदा होना चाहता है। किसी मकान में चार कोने हैं और चारों कोनों पर सुदृढ़ चार स्तम्भ हैं, जब तक वे चारों स्तम्भ ठीक ढंग से अपना काम करते हैं, तब तक मकान को सुदृढ़ और स्थायी

समझना चाहिए और जब उन चार स्तम्भों में एक भी स्तम्भ ढीला पड़ जायगा अथवा गिर जायगा तो मकान का सुदृढ़ रहना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जायगा। यही अवस्था हमारे शरीर की भी है। जिन चार प्रकार के तत्वों से हमारे शरीर को जीवन-शक्ति प्राप्त होती है, उन चारों का अपने-अपने क्रम से होना बहुत आवश्यक है। जब उनके क्रम में अन्तर पड़ेगा अथवा उन चार में से एक भी मनुष्य को न प्राप्त होगा तो शेष तीन मिलने वाले उसके जीवन को जीवन-शक्ति नहीं पहुँचा सकते। इस हिसाब से, यह समझने में किसी को भी अब कठिनाई नहीं हो सकती कि माँस और अंडे मनुष्य को जीवन-शक्ति प्रदान करने का सामान नहीं रखते। यही कारण है कि माँस और अंडे भोज्य पदार्थों में निन्दनीय कहे जाते हैं।

अब प्रश्न यह है कि हमारे शरीर की जीवन शक्ति प्रदान करने वाले कौन-कौन से आहार और किन पदार्थों में हो सकते हैं ? इसके लिए उस नक़शे में एक बार देखकर विचार करना होगा। पाशविक भोजनों में दूध के अतिरिक्त कोई भी हमारे लिए भोजन नहीं है इसलिये कि जिन-जिन तत्वों की हमें आवश्यकता है, वे तत्व पूर्ण रूप में उनसे हमें प्राप्त नहीं होते। इसके पश्चात् हमारे सामने वानस्पतिक पदार्थ हैं। ये पदार्थ हमारे लिए भोजन हो सकते हैं किन्तु वही, जो हमारे आमाशय के अनुकूल हों—हमारे अंग और प्रत्यंग जिनको खा सकें और पचा सकें।

वनस्पति-पदार्थों में जो हमें रुचिकर और अपने अनुकूल प्रतीत हों और जिनको हम बिना पकाए-बनाए अपने दाँतों से खाकर पचा सकें, वही हमारे लिए सर्वोत्तम है। इसके लिए

बिना अधिक सोचे-समझे और किसी प्रकार की उलझन का अनुभव किए, प्रत्येक व्यक्ति अब समझ सकेगा कि हमारे लिए सब से योग्य, लाभदायक भोजन फलों का सेवन है। इन फलों के सम्बन्ध में एक छोटी-सी गलत धारणा यदि सर्व साधारण के विचारों से निकल जाय तो फिर किसी को अपना स्वाभाविक भोजन अपनाने में और उससे लाभ उठाने में कुछ भी आपत्ति नहीं हो सकती। वह गलत, धारणा यह है कि लोगों की समझ में फलों के आहार से मनुष्य का क्या कभी पेट भर सकता है। उनकी समझ में फल इतने हलके पदार्थ हैं कि उनके सेवन से मनुष्य को पूरी न तो शक्ति ही प्राप्त हो सकती है और न उससे उसका पेट ही भर सकता है। जिन लोगों का यह विश्वास होता है वे लोग वास्तव में इन बातों का कभी विवेचन नहीं करते और कदाचित् विवेचन की सामर्थ्य भी नहीं रखते। हमें अपने समाज में, खोजने पर बहुत से ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो फलों की शक्ति के सम्बन्ध में बहुत अच्छे उदाहरण ही नहीं हैं, उसका अनुभव भी रखते हैं।

प्राचीन काल में साधु, सन्यासी, भोगी और तपस्वी फलाहार ही अपना भोजन समझते थे, उनके जीवन में कितना तेज, कितना प्रताप और पुरुषार्थ होता था, यह कदाचित् किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है। रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता को साथ लेकर जब वन को जाने लगे हैं, तब उन्होंने सीता को समझाया है कि बन में जाकर चौदह वर्ष हमको केवल फलों का आहार करके रहना होगा, नदियों और झरनों का जल पीना होगा और पैदल चल कर रास्ता पार करना होगा। परन्तु रामचन्द्र की इस बात पर सीता को कोई अस्वाभाविकता अथवा आश्चर्य की बात नहीं जान पड़ी। अंत में तीनों ही जंगल को चले गए हैं और दस-पाँच दिन नहीं

चौदह वर्ष, उसी फलाहार पर उन्होंने प्रसन्नता के साथ जीवन बिताया है, और अंतिम दिनों में भीषण पराक्रमी लंका-पति रावण और उसकी सेना-शक्ति का सामना किया है। रावण और उसकी सेना की शक्ति कितनी भयानक थी, यह यहाँ पर बताना, व्यर्थ ही है, कहने की बात यह है कि उसका सामना किया फलों का सुन्दर सात्विक भोजन करने वाले रामचन्द्र ने, लक्ष्मण ने और उस बानर-सेना ने जिनका फल ही एक-मात्र भोजन होता है। हिन्दू-समाज को यह स्मरण दिलाने की आवश्यकता न होनी चाहिए कि उस भयानक युद्ध में फलों का भोजन करने वालों की कितनी सफलतापूर्ण विजय हुई थी।

भोजन-सम्बन्धी, सर्वसाधारण की भूल के सम्बन्ध में कितनी गवेषणा के साथ विचार हो रहा है, यह सभी को मालूम नहीं है। इस लेख में जो इसकी वैज्ञानिक छान-बीन की गई है, वह कहाँ तक ठीक है, इस पर कुछ प्रसिद्ध विद्वानों और डाक्टरों की यहाँ पर सम्मति देना आवश्यक प्रतीत होता है। डाक्टर एलेक्स हेग का कहना है—

"इस बात के प्रमाण की जरूरत नहीं है कि मनुष्य का सब से उत्तम आहार फल है। मैंने अपने जीवन में इसका भली भाँति अनुभव किया है और इस नतीजे पर मैं पहुँचा हूं कि फलों के सेवन से मनुष्य की आत्मा शुद्ध, बलवान और पवित्र रहती है।"

मि० एडेम स्मिथ ने लिखा है—"भोजन में मांस को सम्मिलित करना, शरीर को नष्ट करने के साथ अपने जीवन को जल्दी समाप्त करना है। मनुष्य का भोजन तो फल शाक-मात्र है।"

डाक्टर सर हेनरी टाम्सन का कहना है—प्रकृति ने हमारे शरीर की रचना इस प्रकार की है जिससे हम फल और वनस्पति को अपना आहार बना सकते हैं। हमारे शरीर के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, वे सब हमें फलों में ही प्राप्त होती हैं। मैंने खूब देखा है कि जो वानस्पतिक भोजन करते हैं और मांस-मछली से परहेज़ करते हैं, वे स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान होते हैं।

डाक्टर एफ० जे० साइफ़स का कहना है—जो लोग रसायन विद्या को फलाहार और शाकाहार के विरुद्ध समझते हैं, वे सख्त भूल करते हैं। वास्तव में रसायन का मूलाधार वनस्पति ही है। मनुष्य स्वाभाविक वनस्पति और उसके द्वारा फलों के योग्य बनाया गया है। यह मनुष्य की भूल है जो उसने अपना भोजन उसके विरुद्ध पदार्थों का बना रखा है।

डाक्टर जानवुड एम० डी० का कहना है—एक डाक्टर की हैसियत से बहुत दिनों तक मनुष्य के शरीर का अध्ययन करने के पश्चात् मैं कह सकता हूँ कि मनुष्य का मांसाहार, अस्वाभाविक है और उसके शरीर के लिए बहुत हानिकारक है। जो लोग उसका सेवन करते हैं वे वास्तव में अनजान होते हैं, उनको मालूम नहीं होता कि इसके भोजन से उनके शरीर को क्या क्षति पहुँचेगी।

प्रोफेसर ए० विन्टर ब्लायथ ने लिखा है—मनुष्य शरीर का अध्ययन करने के पश्चात् किसी प्रकार समझ में नहीं आता कि मनुष्य का भोजन मांसाहार हो सकता है, उसके लिए तो फल और वनस्पति बनाई गई है।

डाक्टर एडवर्ड स्मिथ ने बड़े जोरदार शब्दों में लिखा है—मनुष्य के शरीर के लिए जिस प्रकार के भोजन की आवश्यकता है, वह सब एक मात्र फलों के द्वारा बड़ी आसानी से

प्राप्त होती है। इससे जो उसको शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त होती है वह किसी प्रकार दूसरे पदार्थों से सम्भव नहीं है।

प्रोफेसर सेम्ज़बुड का कहना है—फलों और शाक के आहार से मनुष्य को जो भोजन प्राप्त होता है, वह उसको दूसरे किसी पदार्थ से प्राप्त होना असम्भव है। जो लोग स्वास्थ्य और बल के लिए मांस का सेवन करते हैं, वे बहुत बड़ी भूल करते हैं। उसके द्वारा मनुष्य दुर्बल और रोगी बनता है। मेरा ज़बरदस्त अनुभव है कि यदि मनुष्य अपने जीवन में सुन्दर फलों और वानस्पतिक पदार्थों का प्रयोग करे तो वह, मनुष्य के सच्चे सुख को प्राप्त करता है।

डाक्टर जोज़िया ओल्ड फ़ील्ड का कहना है—मनुष्य के शरीर के लिए जिस प्रकार की आवश्यकता है, वह सब फलों के द्वारा प्राप्त होती है, मुझे आश्चर्य है कि मनुष्य अपने इस प्राकृतिक भोजन को किस प्रकार भूल गया। जिन लोगों ने फलों के आधार पर अपना भोजन निश्चय किया है उन्होंने उसकी अपूर्व शक्ति का अनुभव किया है। मनुष्य ने जितना ही उनका प्रयोग कम कर दिया है, उतनी ही उनकी पैदावार भी कम होती जाती है।

इस प्रकार एक दो नहीं, बहुत-सी सम्मतियाँ दी जा सकती हैं। परन्तु जितना अधिक उसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है, उसके आधार पर यह भलीभांति समझ में आ जायगा कि मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध भोजन करके अपने आपको किस प्रकार रोग का कीड़ा बना डालता है। मनुष्य वास्तव में फलों की उपयोगिता और अपने लिए आवश्यकता भूल गया है। भूल जाने का कारण भी है और कारण बहुत पुराना तथा जटिल है किन्तु फलों की ओर मनुष्यों का जीवन

जिस प्रकार आकृष्ट हुआ है, उसे देखकर यह सहज ही अनुमान होता है कि यह भूल बहुत शीघ्र सुधरेगी।

स्वास्थ्य और सामर्थ्य के नाम पर मनुष्य जाति कितनी निर्बल हो गई है, यह बात अधिकतर बताने को नहीं है, केवल आँखों से देखने-दिखाने की है। यह रोगी समाज स्वयं ही अपनी अवस्था को आप पहचानने की चेष्टा करेगा, ऐसा जान पड़ता है। यदि वास्तव में सोचा जाय तो हमारे जीवन की प्रायः सभी ख़राबियाँ हमारे भोजन पर अवलम्बित दिखाई देंगी। यदि समाज को अपने स्वभाव के अनुकूल भोजन से अभिरुचि हो जाय तो थोड़े ही दिनों में मनुष्य का जीवन बहुत शान्त, सुन्दर और सलोना बन सकता है।

— ❀-:-❀ —

फलों के सम्बन्ध में संसार के विद्वान

सभी प्रकार की आलोचना के साथ, यह बात निश्चित हो गई है कि मनुष्य के लिये फल ही सर्वोत्तम भोजन है। भोजन के लिये समाज में जितने पदार्थ काम में आते हैं, प्रायः मोटे रूप में सभी की एक अनुक्रमणिका देकर यह भी प्रमाणित कर दिया गया है कि वे अन्यान्य पदार्थ जो फल और वनस्पति के प्रतिद्वन्द्वी हैं, किसी प्रकार उपयोगी नहीं हैं। मनुष्य की बनावट, उसकी प्रकृति और शारीरिक शक्तियां इस बात का प्रमाण देती हैं कि मनुष्य के भोजन के लिये प्रकृति ने फलों की ही व्यवस्था की है। इन सभी बातों को समझने के लिये मनुष्य के शरीर और फल तथा वानस्पतिक पदार्थों से लेकर अन्यान्य पदार्थों तक की जो वैज्ञानिक आलोचना-प्रत्यालोचना की है और उसके द्वारा जो निश्चय किया गया है, उससे सर्वसाधारण के समझने में कि हमारा वास्तविक भोजन क्या है, कोई कठिनाई न होगी।

इसके अतिरिक्त, पुस्तक के विषय की पुष्टि करने के लिये यहाँ पर एक बात की और ज़रूरत समझ पड़ती है। संसार के विभिन्न देशों में लोगों ने, मनुष्य जीवन की इस आवश्यकता को अनुभव किया है, और अपने जीवन में, स्वयं इनका प्रयोग किया है। मनुष्यों के भोजन के सम्बन्ध में, संसार में आए दिनों एक प्रकार का तहलका-सा मचा हुआ है। समाज बड़ी तेजी के साथ भौतिक उत्थान की ओर कदम बढ़ा रहा है, परन्तु उसने यह खूब देखा कि उसके उत्थान के साथ उसके जीवन के उत्थान

का जो सम्बन्ध है, वह किसी प्रकार संतोषजनक नहीं है। अनेक शताब्दिओं से मनुष्य अपनी शारीरिक शक्ति को खोता चला आ रहा है, और उसका यह क्रम इधर कुछ दिनों से और भी अधिक बढ़ गया है। मनुष्य जीवन की जो यह क्षति हुई है और भविष्य में उसके सम्बन्ध में जो भयङ्कर आशंका है, उसकी अवस्था से समाज के विद्वान अपरचित नहीं रह सके। प्रत्येक देश के समाज में कुछ न कुछ ऐसे विद्वान पाये जाते हैं, जिन्होंने इस आवश्यकता और क्षति का भली प्रकार विचार किया है, मानव जाति की इस भावी आशंका ने शरीर-विज्ञान-विशारदों का उस ओर ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने बड़ी सावधानी के साथ इस ओर विचार किया है और प्रायः सभी लोग एक ही नतीजे पर पहुँचे हैं। इस प्रकार, जिन लोगों ने इसके सम्बन्ध में अपना मत स्थिर किया है और जिस नतीजे पर वे पहुँचे हैं, उनके वे विचार और निर्णय, संक्षेप में किन्तु संतोषजनक विस्तार के साथ, यहाँ पर दे देने को आवश्यकता जान पड़ती है।

उनकी सम्मतियों को देने के पूर्व एक बात लिखना आवश्यक है। मानव जाति के भोजनों में व्यतिक्रम करने का अपराधी कौन है? इस प्रश्न की एक गम्भीर आलोचना करने के बाद, मालूम होता है कि संसार की वर्तमान नवीन सभ्यता के पक्षपाती और प्रवर्तक उसके उत्तरदायी हैं। इस नवीन सभ्यता के पूर्व संसार के उन्नत जीवन पर या तो भारत के अध्यात्मवाद का प्रभाव था अथवा मनुष्य स्वयं नैसर्गिक जीवन का पक्षपाती था। उसके इस प्राकृतिक जीवन को मटियामेट करने का एक मात्र अपराध योरप के समुन्नत राष्ट्रों ने किया है जिसका समर्थन करते हुए एक अँगरेज लेखक की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

"मनुष्य जितना ही समुन्नत होता जाता है, उतना ही शरीर-विज्ञान में वह अपने आपको पतित करता जाता है। समाज का स्वास्थ्य जितना आज रोगी दिखाई देता है, उससे भी अधिक रोगी उसके होने की आशंका है, कारण यह है कि जिन भूलों के कारण हमारे देश के निवासियों ने शरीर का स्वास्थ्य और स्वाभाविक पुरुषत्व खोया है, वे भूलें आज भी लगातार बढ़ती जाती हैं। मांस, मदिरा, अंडे, चाय, कहवा आदि जितनी ही समाज में प्रयोग की जायगी, उतनी ही समाज की अधोगति होगी। सुन्दर स्वास्थ्य और सात्विक भावों को प्राप्त करने के लिए, फलाहार और शाकाहार को छोड़ कर और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।"

प्रसन्नता की बात यह है कि जिन देशों ने मनुष्य जीवन की स्वाभाविकता को नष्ट किया है, उन्हीं देशों में आज ऐसे बहुत से विद्वान और शरीर-विज्ञान के पंडित पाये जाते हैं जिन्होंने इस दुरवस्था के कारणों का भलीभाँति अध्ययन किया है और अपने अध्यवसाय से उन कारणों को दूर करने के लिए प्रयत्न किया है। सभी लोगों ने मनुष्य-जीवन की विपरीत अवस्थाओं का वर्णन करते हुए फलाहार पर ज़ोर दिया है। जिन लोगों ने वनस्पति शब्द का उल्लेख किया है, उनका उद्देश्य विशेष रूप से उनके द्वारा उत्पन्न फलों से है। फलों के बाद, सब्ज़ी और तरकारी भी मनुष्य का भोजन है किन्तु वहीं तक, जहाँ तक वह प्रकृति रूप में प्रयोग की जा सके किन्तु समाज में जहाँ पर सब्ज़ी और तरकारियाँ खाई जाती हैं, वहाँ पर वे भिन्न-भिन्न मसालों के साथ आग में पका कर और बनाकर खाई जाती हैं, ऐसा करने से उन वानस्पतिक पदार्थों का प्रकृत अंश जो स्वभावतः मनुष्य के जीवन को शक्ति

और स्वास्थ्य देने वाला होता है, नष्ट हो जाता है जैसा कि विश्वपूज्य महात्मा गाँधी ने लिखा है—

"A vegetable diet is the best after a fruit-diet. Under this term we include all kinds of pot-herbs and cereals, as well as milk. Vegetables are not as nutritious as fruits, since they lose part of their efficacy in the process of cooking, we cannot, however, eat uncooked vegetables".

"वानस्पतिक भोजन मनुष्य के लिए उत्तम है परन्तु फलों के पश्चात् । वनस्पति-पदार्थों के साथ-साथ, प्रत्येक प्रकार की शाक-सब्ज़ी, अन्न और दूध की भी यही अवस्था है। वानस्पतिक पदार्थों में मनुष्य-जीवन के पालन करने का वह गुण नहीं है जो फलों में है। इसलिए कि वानस्पतिक पदार्थ, बिना पकाये हम खा नहीं सकते और पकाने से उनका प्राकृतिक गुण और लाभ मारा जाता है।"

महात्मा जी ने तो फलों के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है, यदि उनकी पूर्ण रूप से सम्मतियां दी जाँय तब तो एक पुस्तक के समस्त पृष्ठ इसी में भर जाँयगे। वे फलों की उपयोगिता को कहाँ तक स्वीकार करते हैं, इसको जानने के लिए ऊपर का एक छोटा-सा उद्धरण ही काफ़ी है।

पाश्चात्य देशों के बड़े-बड़े विद्वानों और डाक्टरों ने फलों के गुणों को कहाँ तक और किस प्रकार स्वीकार किया है, इसके लिए निम्नलिखित कुछ सम्मतियाँ दी जाती हैं। मनुष्य का भोजन क्या है, इसपर लेडी डाक्टर अनाकिंग्स कोर्ड ने एक बड़ी उपयोगी पुस्तक लिखी है, उसमें उसने मनुष्य के शरीर की बनावट पर बड़ी गम्भीरता के साथ विचार किया है और

अन्त में उसने मनुष्य की समता, बन्दरों के साथ दी है और उसी आधार पर उसने निश्चय किया है कि मनुष्य का सर्वोत्तम भोजन फल है। उसने लिखा है—

मुझे ऐसे बहुत-से आदमी मिलते हैं जो मनुष्य के मांसाहारी होने पर विवाद करते हैं। वे मनुष्य के दाँत और आमाशय की बनावट पर यह साबित करते हैं कि उसका मांसाहारी होना स्वाभाविक है किन्तु ऐसी अवस्थाओं में बन्दरों को भी मांसाहारी होना चाहिये था, क्योंकि उसके लम्बे, पैने और मज़बूत दाँत तो मांसाहारी होने का और भी अधिक प्रमाण रख सकते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। किसी ने आज तक, किसी बन्दर को मांस का भोजन करते नहीं देखा होगा।

मोसियोपापिट का कहना है—मनुष्य के दाँत और उसके आमाशय की बनावट यह प्रकट करती है कि वह फलाहारी जीव है। ऐसी अवस्था में वह फलों का आहार छोड़ कर अन्यान्य भोजनों का आश्रय लेता है और उनको पचाने तथा उनसे आवश्यक तत्वों का लाभ उठा सकने में वह असमर्थ हो जाता है।

प्रोफ़ेसर अजोन ने भी इसी प्रकार की सम्मति देते हुए लिखा है- "मनुष्य के शरीर की बनावट जिन जीवों के साथ मिलती है वे फलों का भोजन करते हैं। अनुभव से भी यह बात देखी गई है कि फलों को खाकर मनुष्य, जितना स्वस्थ, शक्तिशाली और उत्तम विचारों से पूर्ण रह सकता है, उतना वह अन्य किसी प्रकार के भोजनों से नहीं रह सकता।"

मनुष्य के भोजन के सम्बन्ध में इसी प्रकार का समर्थन करते हुए फ्रांस और इङ्गलैण्ड के बड़े-बड़े डाक्टरों ने स्वीकार किया है कि मनुष्य, स्वभाव से फलाहारी और शाकाहारी है।

जो लोग ग़लती से मांसाहार करते हैं, वे उसका फल भी भोगते हैं। उनके शरीर को किस प्रकार के कष्टों को सहना पड़ता है और किस प्रकार वे रोगी हो जाते हैं, इसको वे नहीं जानते, किन्तु उनके डाक्टरों को यह मालूम होता है। डाक्टर फ़्लोरेल्ज़ का कहना है—

मनुष्य न तो मांसाहारी है और न वनस्पति आहारी है। उसके दाँत उन पशुओं और जानवरों से नहीं मिलते जो जुगाली करते हैं। उसके आमाशय की बनावट भी उन पशुओं के आमाशय की-सी नहीं होती। यदि मनुष्य के शरीर की बनावट पर भलीभाँति विचार किया जाय, तो मालूम हो जायगा कि वह बन्दरों की भाँति फलाहारी और शाकाहारी है।

प्रोफ़ेसर चार्ल्स वेल्स ने लिखा है – जिनको शरीर-विज्ञान की जानकारी है, उनको यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि मनुष्य को प्रकृति ने फल और शाक खाने के योग्य बनाया है, मनुष्य के दाँत और उसका आमाशय इस बात का स्पष्ट प्रमाण देता है।

इन बातों का बड़ी गम्भीरता के साथ विवेचन करते हुए प्रोफ़ेसर सरजान अज़ो ने लिखा है—मनुष्य के शरीर की बनावट और उसका ढाँचा बन्दरों और बनमानुसों की भाँति बना है, और वह उन्हीं पदार्थों के खाने-पीने के योग्य बनाया गया है जिनको बनमानुस और बन्दर खाते हैं। अर्थात् मनुष्य का भोजन फल है। उसके शरीर को फलों के प्रयोग से जो लाभ हो सकता है वह लाभ दूसरे पदार्थों से नहीं हो सकता है।

जर्मनी के एक विद्वान मि० हैकल ने लिखा है—जहाँ तक परीक्षा से मालूम हुआ है, मनुष्य और बनमानुस के शरीर की बनावट आपस में मिलती है। हमारे शरीर की भाँति उसके

भी हड्डियाँ और नसें होती हैं। हाथों पैरों की बनावट भी अधिकतर रूप में मिलती है। हमारे शरीर के भीतर जिस प्रकार जो अवयव होता है, बनमानुस के शरीर में वह उसी प्रकार मिलता है। शरीर-निर्माण की एक-एक बात एक-दूसरे से मिलती है। हमारे मुख में बत्तीस दांत होते हैं, उसी प्रकार बनमानुस के मुख में भी बत्तीस दाँत होते हैं। मनुष्य के आमाशय में पाचन-क्रिया के लिए जो विशेषता पाई जाती है, वही बनमानुस और बन्दरों के आमाशय में पाई जाती है।

डाक्टर जान वुड ने अपने एक लेख में लिखा था—मनुष्य के लिए मांस का भोजन, उसकी प्रकृति से भिन्न है। उसका स्वाभाविक आहार फल और शाक है।

प्रोफ़ेसर विलियम लारेन्स का कहना है—मनुष्य के दाँतों और आमाशय की बनावट, मांसाहारी जीवों से बिल्कुल भिन्न है। जब मनुष्य के दांतों, जबड़ों और आमाशय की बनावट पर विचार किया जाता है तब स्पष्ट प्रकट होता है कि वह फलाहारी और शाकाहारी जीव मात्र है।"

फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान पियर गेसेण्डी का कहना है—मैंने मनुष्य-जीवन का जहाँ तक अध्ययन किया है और जहाँ तक उस पर विचार किया है, उसके आधार पर मैं गर्व के साथ कह सकता हूं कि मनुष्य फलाहारी जीव है। जो लोग मांसाहारी बताते अथवा, मांस का आहार करते हैं, वे भूल करते हैं और अपने शरीर एवम् जीवन, दोनों को नष्ट करते हैं।

फ्रांस के माननीय विद्वान प्रोफ़ेसर बैरनकूवे ने लिखा है—मनुष्य का शरीर देखकर यह सहज ही जान पड़ता है कि उसका भोजन फल और शाक है,! मांसाहारी जीवों के साथ उसकी तुलना कभी नहीं की जा सकती। अन्य जीवों में बन-

मानुस एक ऐसा जीव है जिससे मनुष्य बिल्कुल मिलता-जुलता है। बन्दर और बनमानुस फल और शाक-शब्जी खाते हैं, अतएव मनुष्य का भी यही आहार है।

जर्मन के एक नामी विद्वान प्रोफेसर शाफ व्हूसन ने लिखा है—मनुष्य मांस का स्वभावतः विरोधी है और इस बात का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि उसके दांतों और आमाशय की बनावट बन्दरों और बनमानुसों से मिलती है। ये दोनों जीव फल और शाक-सब्ज़ी खाते हैं, मनुष्य का भी स्वाभाविक यही भोजन है।

ऊपर की सम्मतियों और विचारों से बार-बार एक ही बात का समर्थन होता है। मनुष्य के भोजन के सम्बन्ध में और भी बहुत-सी सम्मतियाँ दी जा सकती हैं परन्तु उन्हें अनावश्यक समझ कर यहाँ पर छोड़ दिया जाता है। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध डाक्टरों, वैज्ञानिकों और शरीर-शास्त्र के ज्ञाताओं के इन विचारों से स्पष्ट रूप से निश्चय हो जाता है कि मनुष्य यदि अपने इस स्वाभाविक भोजन पर ही अपना निर्वाह करे तो वह बहुत सुखी, स्वस्थ और मनुष्योचित कार्य-पटु बन सकता है।

लोगों ने मनुष्य के भोजन के सम्बन्ध में फलों के साथ वानस्पतिक पदार्थों--शाक सब्जी आदि को भी अनुकूल प्रमाणित किया है, इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य के लिए शाक-शब्जी आवश्यक और उपयोगी भोजन है परन्तु उनमें फल सर्वोत्तम है। शाक-सब्जी के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि उस अवस्था में खाने के योग्य होती है जब वह आग पर पकाई जाती है। इसके लिए महात्मा गाँधी की एक सम्मति पहले दी जा चुकी है। फलों और वनस्पति के सम्बन्ध में उन्होंने आगे चलकर फिर लिखा है जो विषय की उपयोगिता को और भी

स्पष्ट करता है, इस लिए उसको ज्यों का त्यों नीचे दिया जाता है-

From this many scientist have concluded that man is intended to live, not on meat, not even on all vegetables, but chiefly on roots and fruits.

वैज्ञानिक ने बड़ी गम्भीरता के साथ यह निश्चय किया है कि मनुष्य न तो मांस को अपना आहार बनाकर जीवित रहना चाहता है और न शाक-सब्जी पर। वह तो कन्द और फलों को ही विशेष रूप से अपना भोजन समझता है और उसी पर वह जीवित रह सकता है।

इसके बाद वे फिर लिखते हैं और आगे की पंक्तियों में वानस्पतिक पदार्थों और फलों को वस्तुस्थिति पर वे और भी स्पष्ट प्रकाश डालते हैं:—

Scientists have found out by experiments that fruits have in them all the elements thit are required for man's sustenance. The plantain, the orange, the date, the grape, the apple, the almond, the walnut, the groundnut, the cocoanut—all these fruts contain a large percentage of nutritious elements. The scientists even hold that there is no need for man to cook his food. They argue that he should be able to subsist very well on food cooked by the Sun's warmth, even as all the lower animals are able to do and they say that the most

nutritious elements in the food are destroyed in the process of cooking, and that those things that can not be eaten uncooked could not have been intended for our food by Nature.

वैज्ञानिकों ने इस बात की भी परीक्षा की है कि मनुष्य की ज़रूरत के लिए जिस प्रकार के तत्वों की आवश्यकता है, वे सब फलों में पाये जाते हैं। केला, नारङ्गी, छुहारा, अंगूर, सेव, बादाम, अखरोट, किशमिश और गरी आदि आदि में मनुष्य को जीवन-शक्ति प्रदान करने वाले शत प्रति शत अंश होते हैं। इन वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि मनुष्य को अपना भोजन पकाने की कोई जरूरत नहीं है। सूर्य की धूप में पके हुये फल ही उसके लिए काफ़ी है। इस बात को वे लोग साबित करते हैं। उनका यह भी कहना है कि अन्य जीवों को अपना भोजन पकाने की क्यों आवश्यकता नहीं होती, फिर मनुष्य को क्यों है? उनका कहना है कि पकाने से पदार्थ की जीवन-शक्ति नष्ट हो जाती है। इसलिए जो पदार्थ हम बिना पकाये नहीं खा सकते, वे पदार्थ हमारे लिए कदापि भोज्य नहीं हो सकते।

फलों की आवश्यकता और उपयोगिता पर अब अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं है।

संसार की जातियों में फलाहार का प्रभाव।

मानव समाज में यद्यपि भोजन की व्यवस्था बहुत बिगड़ गई है, फिर भी प्रत्येक जाति और समाज में प्राकृतिक भोजन का उपयोग पाया जाता है किन्तु कहीं पर कम और कहीं पर अधिक।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भोजन की इस प्राकृतिक व्यवस्था को विगाड़ने वाला नवीन सभ्यता का विकाश है। इसलिए संसार के सभी देशों और जातियों की यदि सामाजिक और व्यवहारिक अवस्था का पता लगाया जाय तो उसके भीतर अभी इस बात के बहुत प्रमाण मिलते हैं जिनसे मालूम होता है, कि उस प्राकृतिक भोजन का अभी बहुत कुछ प्रयोग होता है। इस लेख में संसार की भिन्न-भिन्न जातियों और समाजों की अवस्थाओं की छानबीन करके यह देखना है कि जो लोग फलों का भोजन करते हैं, उनके जीवन में, अन्य मनुष्यों की अपेक्षा, जो अप्राकृतिक भोजनों के अभ्यासी हैं,, क्या प्रभाव पड़ता है।

प्रत्येक देश और जाति के स्त्री-पुरुषों की भोजन-सम्बन्धी परिस्थितियों का अध्ययन करने पर, उनके तीन विभाग करने पड़ते हैं। पहले विभाग में वे लोग हैं जो मजदूरी या पार-श्रमिक कार्य करते हैं। इन श्रमजीवियों में मजदूर, किसान और साधारण स्थिति का ग़रीब-समुदाय है। दूसरे विभाग में वे लोग हैं जो पहले विभाग वालों से कुछ ऊपर हैं और आर्थिक अवस्था में मध्यम श्रेणी के गिने जाते हैं। तीसरे विभाग में वे लोग हैं जो सम्पत्तिशाली, रईस, उच्च-शिक्षित और समर्थ

व्यक्ति हैं। इन तीनों विभागों की अवस्था अलग-अलग है। इनमें अन्तिम विभाग अप्राकृतिक भोजनों का बहुत अधिक अभ्यासी है। दूसरा विभाग वानस्पतिक पदार्थों का भोजन करता हुआ, यथासम्भव मांस, मदिरा, मछली, अंडा आदि अस्वाभाविक भोजनों का उपयोग करता है। किन्तु पहला विभाग प्राकृतिक भोजनों का अधिक अभ्यासी है। वे लोग, फल, अनाज और शाक-भाजी पर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यहाँ पर अनाज के सम्बन्ध में थोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक है, अनाज के नाम से जो वस्तुएँ पुकारी जाती हैं, वे वास्तव में वानस्पतिक पदार्थ हैं और उनमें तथा फलों में कोई अन्तर नहीं है। प्रत्येक अनाज भी फल ही है। किन्तु उनका उपयोग मनुष्य आग में पकाकर या भूनकर करता है इसलिए वे सब फलों की अपेक्षा, मध्यम श्रेणी के हैं। फल, अनाज और शाक-सब्जी – ये तीन भोजन प्राकृतिक तथा वानस्पतिक भोजन हैं इनमें फल सर्वोत्तम और अनाज तथा शाक-भाजी मध्यम श्रेणी में हैं।

ऊपर की विवेचना के अनुसार, मनुष्य समाज तीन श्रेणियों में विभाजित होता है। तीनों श्रेणियों के अलग-अलग भोजन क्या हैं, यह भी ऊपर बताया जा चुका है। अब नीचे प्रत्येक देश और जाति के लोगों की, इन तीनों श्रेणियों के अनुसार, भोजन व्यवस्था देखकर इस बात पर प्रकाश डालना है कि उनमें, किसकी कैसी अवस्था है!

सब से पहले हम अपने देश की अवस्था पर विचार करना चाहते हैं। भारतवर्ष, स्वभावतः अध्यातमवादी होने के कारण प्राकृतिक भोजनों का और विशेषकर फलों का अनुयायी रहा है किन्तु आज उसका वह समय नहीं रहा, इसीलिए उसके विचारों

और सिद्धान्तों का खो जाना असम्भव नहीं है। अन्य देशीय जातिओं ने उसके खान-पान में, व्यवहार-वर्त्ताव में और धार्मिक भावों में कितना उलट-पलट कर दिया है, यह सब यहाँ बताने की आवश्यकता नहीं है। वरन् वह इतनी साधारण होगई है कि उससे सर्वसाधारण अपरिचित नहीं है। इस अवस्था में उसके खाने-पीने का जीवन भी कुछ का कुछ हो गया है। किन्तु, फिर भी ऐसी बात नहीं है कि प्रकृति का प्यारा-दुलारा भारत, प्रकृति की ओर बिल्कुल विमुख हो गया हो। देश में दूसरी और तीसरी श्रेणी के लोग—जैसा कि ऊपर विभाजित किया गया है—प्राकृतिक भोजनों से भिन्न भोजन करते हैं। किन्तु तीसरी श्रेणी की अपेक्षा, दूसरी की अवस्था संतोष जनक है। पहली श्रेणी के लोगों में फल और प्राकृतिक भोजन ही प्रायः पाया जाता है। उनको उच्चकोटि के फल नहीं मिलते, साधारण से साधारण स्थानों में जो फल पाये जाते हैं, उन्हीं का वे लोग बड़ी रुचि के साथ उपयोग करते हैं और तरह तरह से उनको खाते हैं। अनाज के दानों को वे लोग कच्चे और पक्के—दोनों तरह से प्रयोग करते है। दूध, मट्ठा, मक्खन, घी, अनाज, साग सब्जी और फल—यही उनके भोज्य पदार्थ हैं, देश की निर्धनता के कारण, तीसरी श्रेणी के लोगों को ये भोजन भी समय-समय पर पेट-भर नहीं मिलते, फिर भी वे प्रसन्न, प्रयत्नशील परिश्रमी और तन्दुरुस्त होते हैं देश की इन तीनों श्रेणियों के लोगों की शारीरिक अवस्था की तुलना करने से, कोई भी व्यक्ति यह समझ सकेगा कि वानस्पतिक पदार्थों का भोजन करने वाले, अन्य लोगों की अपेक्षा कितने मोटे, स्वस्थ और बलवान होते हैं। जो लोग मूल्यवान किन्तु अप्राकृतिक भोजनों के अभ्यासी हैं, वे किस प्रकार नाजुक मिजाज, दुर्बल शरीर, शक्ति और सामर्थ्यहीन तथा दुख और कष्टों को झेलने में

कातर होते हैं, यह बड़ी आसानी से समझा जा सकता है। इन तीनों श्रेणियों के लोगों की इस अवस्था का कारण क्या है? मज़दूरों, किसानों और उनकी स्त्रियों में कितना स्वास्थ्य, माँस, और रक्त होता है, इसका परिचय उनके शरीर देते हैं। उनमें नाज़ और अदा का सौन्दर्य नहीं होता, उनके वस्त्रों में आँखों को चकाचौंध करनेवाली सफाई, तथा चमक-दमक नहीं होती, किन्तु उनके शरीरों में स्वास्थ्य और बल होता है, उनके जीवन में, बीमारियों का सहज ही आक्रमण नहीं होता। उनके शरीर सर्दी, गर्मी, तथा अन्यान्य उत्पात् सहने की अपूर्व शक्तियाँ रखते हैं। जिन्होंने देहातों की अवस्था का अध्ययन किया है अथवा जो गावों की परिस्थितियों से अपरिचित नहीं हैं, उनको यह बताने की आश्यकता नहीं है कि वहाँ जब संयोगवश कोई किसी बीमारी में ग्रसित होता है तो वह बिना किसी उलझन और चिकित्सा के अपना काम करता रहता है। वह अपनी उस बीमारी की परवाह नहीं करता। वे साधारण विचार वाले होते हैं बीमारी के सम्बन्ध में, हमने उनको बहुत अधिक यह कहते सुना है कि जितने दिनों का कष्ट बदा है, उतने दिन तो उसका भोग करना ही पड़ेगा। समय हो जाने के बाद ही बीमारी अच्छी हो सकती है, चाहे दवा की जाय चाहे न की जाय। हमने खूब देखा है कि वे महीनों बीमार पड़े रहते हैं और अपने आप अच्छे हो जाते हैं।

उन लोगों के शरीरों की इस अवस्था को देखकर क्या कोई यह बता सकता है कि उनके शरीर इस प्रकार पत्थर और लोहा क्यों होते हैं? क्या कोई इस बात का उत्तर देगा कि प्रकृति ने कौन-सी शक्ति उनके शरीरों में भर दी है, जिससे वे संसार के बड़े से कामों को हँसते-खेलते सहन करते हैं? हमारा यह विश्वास है और कोई भी समझदार व्यक्ति, यदि

सोचेगा तो वह समझ सकता है कि उनके शरीरों में इस प्रकार की शक्ति उत्पन्न करने वाले फल आदि—प्राकृतिक भोजनों के अतिरिक्त और कोई नहीं है। यह फलों का गुण है—यह उनके स्वाभाविक भोजनों का परिणाम है! और कुछ नहीं!!

हम संसार के दूसरे-दूसरे देशों के लोगों की इस अवस्था का विवेचन सामने रखकर पाठकों को बताना चाहते हैं कि फलों और प्राकृतिक भोजनों में जो गुण है, वह गुण और शक्ति, अन्य भोजनों से किसी प्रकार नहीं प्राप्त हो सकती। विस्तार-भय से अधिक न लिखकर प्रत्येक देश और जाति की अवस्था को व्यक्त करते हुए यह बताने की चेष्टा करेंगे कि वहाँ पर सब से अधिक शक्तिशाली, स्वस्थ और सुखी कौन लोग हैं और उनके कौन-से भोजनों का, उनके जीवन के लिए यह आशीर्वाद है!

अफ्रीका के लोग स्वस्थ और नीरोग पाये जाते हैं। उनमें कुछ लोग तो बहुत ही परिश्रम-शील और बलशाली होते हैं, उनके बल, पौरुष और आरोग्य की प्रशंसा करते हुए प्रोफेसर राबर्टसन स्मिथ ने लिखा है कि अफ्रीका के लोगों में ईंटों के ढोनेवाले, अद्भुत परिश्रमी और ताक़तदार होते हैं। उनकी इस ताक़त को देखकर जब पता लगाया गया तो मालूम हुआ कि वे लोग केवल फल, रोटी और दूध का प्रयोग करते हैं।

जिन्होंने अरब के लोगों को देखा है, वे जानते हैं कि वे लोग किस प्रकार शरीर के विशाल, फुर्तीले और ताक़तदार होते हैं। परिश्रम करने में असाधारण और वलवान होते हैं। वे अपने जीवन में केवल फलों और दूध का उपयोग करते हैं।

ब्राजील के रहने वाले गुलाम लोग बहुत हृष्ट-पुष्ट और मज़बूत समझे जाते हैं। वे अत्यन्त परिश्रमी और अधिक से

अधिक बोझा अपने हाथों से उठाकर बहुत दूर तक ले जाते हैं। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि ढाई-ढाई मन के बोरों को लेकर वे दो-दो मील तक बिना रुके और बिना आराम किए, चले जाते हैं। वे लोग बीमार बहुत कम होते हैं। उनका भोजन फल और चावल, रोटी होता है!

रायोडिजैन्रो के गुलामों की भी इसी प्रकार प्रशंसा है। उनका शरीर बहुत मजबूत और गठा हुआ होता है। लागो-आयारा के मज़दूरों के लिए कहा जाता है कि वे बहुत तन्दुरुस्त और भयानक परिश्रमी होते हैं। पीरू, तोबासों, एण्डेमंज़, कुरू, न्यूहेब्रोडीज़, सैंडविच, जापानियों एवम् अन्यान्य द्वीपों के रहने वाले अपने सुगठित शरीर, परिश्रम और बल के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। वे लोग फल और रोटी ही अधिक खाते हैं।

कनारी द्वीप के लोग भी बड़े बलवान होते हैं। वज़न में भारी से भारी बोझे को, वे लोग उठाकर बड़ी आसानी से जहाँ चाहते हैं, पहुँचा देते हैं। एक बार की घटना है कि कनारी का एक मल्लाह बहुत भारी बोझे को अकेले उठाकर कहीं अन्यत्र ले गया, उसी बोझे को उठाने में अमेरिका-निवासी चार-पाँच आदमी लगे रहे और असमर्थ रहे। इनके भोजनों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये लोग मोटी-मोटी रोटी, फल एवम् तरकारी खाने के आदी होते हैं।

अमेरिका के चिली-लोग अपने परिश्रम के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं, वे लोग मज़दूर हैं और खानों में काम करते हैं। वे इतना अधिक परिश्रम करते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। ये लोग अंजीर के फल और रोटी खाते हैं, और अपने कठिन कामों से दूसरों को चकित कर देते हैं।

चीन के लोग अपनी होशियारी और मज़बूती के लिए मशहूर हैं। वे शरीर में इतने शक्तिशाली होते हैं कि बड़ा से बड़ा बोझा लादे वे जहाँ चाहें घूमा करें परन्तु उन्हें कुछ कष्ट नहीं होता। कैण्टन के रहने वाले कुली तो अपने परिश्रम के लिए बहुत विख्यात हैं। वे भारी से भारी बोझा उठाकर ले जाने में और अपनी-अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने में अपूर्व काम करते हैं। ये लोग अधिकतर फल और चावल खाते हैं।

रूम में किबरस नामक एक द्वीप है वहाँ के मज़दूर माँस से घृणा करते हैं और फलों पर बड़ी रुचि रखते हैं। उनमें इतनी जीवन-शक्ति होती है कि सत्तर वर्ष के बुड्ढे भी, जवानों की तरह अकड़कर चलते हैं। उनके स्वास्थ्य और पौरुष को देखकर कभी अनुमान नहीं होता कि ये इतनी अधिक अवस्था के हो सकते हैं। उनके शरीर बड़े हृष्ट-पुष्ट होते हैं। उनके विचार शुद्ध और संयमशील होते हैं। अपनी ईमानदारी के लिए वे लोग बहुत प्रसिद्ध हैं।

मिश्र के कृषकों के भोजन की सादगी देखकर आश्चर्य होता है। उनके शरीरों में परिश्रम पूर्ण कार्य करने में बिजली की शक्ति होती है। वे हट्टे-कट्टे होते हैं। उन लोगों में से जो नाव चलाते हैं वे बहुत ताक़तदार होते हैं। उनका भोजन फल और अनाज मात्र होता है। उनके साधारण भोजन का अद्भुत प्रभाव देखकर विस्मय होता है।

इंग्लैण्ड में लंकाशायर और यार्कशायर के मज़दूर लोग फल और तरकारियाँ खाते हैं किन्तु परिश्रम करने में बड़े बलवान होते हैं। यह देखा जाता है कि उनके साथ जो लोग मांस मदिरा और मछली का सेवन करने वाले होते हैं वे

उनका मुक़ाबिला नहीं कर सकते। इसका फल यह होता है कि इन मांसाहारियों की अपेक्षा उनको वेतन भी अधिक मिलता है।

इंगलैण्ड के देहातों के सम्बन्ध में मि० किंग्सफोर्ड ने लिखा है कि पहले ज़माने में यहाँ के देहातों में मांस-मदिरा का बड़ा परहेज़ किया जाता था। उस समय यहाँ के निवासी बड़े ताक़तदार होते थे। आज भी उनमें बहुत कुछ परहेज़ की मात्रा पाई जाती है, किन्तु उन्हीं लोगों में जो ग़रीब तथा मज़दूर हैं और इसीलिए दूसरों की अपेक्षा वे ग़रीब और मज़दूर शक्तिशाली तथा बलवान पाये जाते हैं। वहाँ के लोगों में देखा जाता है कि जो मांस का आहार करते हैं, पच्चीस वर्ष की अवस्थाओं में ही, उनके शरीर का बहुत अधिक ह्रास हो जाता है। यह भी देखा गया है कि मांसाहारी परिवारों के घरों के लड़के और लड़कियाँ भी स्वस्थ और मज़बूत नहीं होतीं।

मि० स्माइल ने क्विम्बरलैण्ड के देहातों की अवस्था पर लिखा है कि यहाँ पर जो मांस-मदिरा का उपयोग करते हैं उनकी अपेक्षा वे लोग यहाँ काफ़ी स्वस्थ, बलवान और परिश्रमी पाये जाते हैं जो दूध, फल, रोटी और तरकारी खाते हैं और सदा उसी प्रकार के भोजन पर अपना निर्वाह करते हैं।

मि० हेनरी ने एक स्थल पर लिखा है कि प्राचीन काल में अंगरेज़ लोग अत्यन्त बलिष्ठ, सुगठित शरीर और परिश्रमी होते थे। वे लड़ाइयाँ लड़ने, परिश्रम के कार्य करने, पैरों से लम्बी यात्रा करने आदि में बहुत प्रसिद्ध थे परन्तु जब से उनके भोजनों में प्राकृतिक पदार्थों के स्थान पर मांस, मदिरा और अंडे, मछलियों ने अधिकार किया है तब से उनकी शक्ति बराबर घटती जाती है और उनके शरीर की वह अवस्था भी अब नहीं रह गई। यह भी देखा जाता है कि जो लोग अपने जीवन

में फलों और तरकारियों का सेवन करते हैं वे, उनकी अपेक्षा कहीं स्वस्थ और अच्छे हैं जो भोजनों में इनके विरोधी हैं।

फ्रांस के किसानों और मजदूरों की अवस्था उतनी अच्छी नहीं है जितनी कि और जगहों के किसानों और मजदूरों की पायी जाती है। इनमें रोटी के साथ मांस और उसका शोरवा खाने की चाल है वहाँ के कुछ जिलों में तो अप्राकृतिक भोजनों की प्रथा बहुत बढ़ गई है परन्तु कहीं-कहीं पर कम है। जहाँ कम है, वहाँ पर मांस और मदिरा त्योहारों में उपयोग किया जाता है। मि० किंगसन फोर्ड ने लिखा है कि यहाँ के लोगों का स्वास्थ्य और शरीर का बल पाशविक भोजन के कारण दिन पर दिन घटता जाता है।

प्राचीन काल में यूनान के लोग केवल फलों का भोजन करते थे। जिस समय की ये बातें हैं, उस समय में यूनान के लोग बड़े परिश्रमी, स्वस्थ और बलवान होते थे। उन लोगों को फलों और व्यायाम के सम्बन्ध में शिक्षा मिलती थी, परन्तु इधर, कुछ समय से यहाँ भी माँस के खाने की प्रथा जारी हो गई है। अमीर और बड़े आदमी तो मांस-मदिरा खाते ही हैं, समाज के साधारण लोग भी उसका सेवन करने लगे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि यूनान के लोग सुस्त और निकम्मेपने के लिए मशहूर हो रहे हैं। एक पत्र का कहना है कि यूनान के लोगों की इस शारीरिक अवस्था का कारण उनका मांस-मदिरा का सेवन है।

परन्तु यूनान में ही कुछ लोग पाये जाते हैं जो मांस के भोजन से परहेज करते हैं। ये लोग अंजीर, अंगूर किशमिश और अनेक प्रकार के फलों के साथ रोटी भी खाते हैं। ये लोग बहुत मजबूत, बलवान और परिश्रमी होते हैं। इनका स्वभाव

सदा शान्त और प्रसन्न रहता है। वहाँ के कारखानों में देखा जाता है कि जो मज़दूर मांस से परहेज़ करते हैं वे लोग फल, रोटी और साग-भाजी खाते हैं और मांस खाने वालों की अपेक्षा बड़े हट्टे-कट्टे तथा परिश्रमी होते हैं।

इंगलैण्ड के मज़दूरों के साथ कोयले की खानों में जो आयरलैण्ड के मजदूर काम करते हैं वे बड़े परिश्रमी और बलवान पाए जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे लोग मांस नहीं खाते।

इटली के किसान बहुत शक्तिशाली और मेहनती होते हैं। वे अपने खेतों में काम करते हुए कभी थकते ही नहीं। उनके शरीर सुन्दर मज़बूत होते हैं। उनका भोजन वनस्पति-पदार्थ होता है।

जापान के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि वे लोग न केवल मांस से ही परहेज़ करते हैं बल्कि दूध और उससे बनी हुई चीजों से भी परहेज़ करते हैं। वे अधिकतर फल शकरकंद चावल और दाल खाते हैं। जिन लोगों ने जापान का इतिहास लिखा है उन्होंने जापान के निवासियों की बड़ी प्रशंसा की है। उनका स्वास्थ्य, मज़बूत शरीर और उनकी ताक़त सदा प्रशंसा के योग्य है। वे पैदल यात्रा करने में और भारी बोझ उठाने में बड़े बहादुर होते हैं।

माल्टा के लोगों के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध है कि वे लोग फलों के अतिरिक्त सब्ज़ी-तरकारी और रोटी खाते हैं। वे लोग बड़े मोटे-ताज़े और बलवान होते हैं, उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा होता है और वे लोग बीमार बहुत कम होते हैं।

मैक्सिको के रहनेवाले, साधारण अनाज की रोटियों और फलों का सेवन करते हैं, परन्तु शरीर के वे इतने

बहादुर होते हैं कि मांस खाने वाले मज़दूर उनका किसी प्रकार सामना नहीं कर सकते। उनके अंग इतने मज़बूत होते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है।

नार्वे के लोग बहुत दीर्घायु हुआ करते हैं। वे सदा प्रसन्न और तन्दुरुस्त भी पाये जाते हैं, उन लोगों के सम्बन्ध में प्रशंसा करते हुए डा० ब्रुक ने लिखा है कि उनके स्वास्थ्य और अधिक आयु के कारण उनके भोजन की सादगी है। कहा जाता है कि नार्वे के कुछ भागों में लोग माँस के भोजन के नाम से भी अनजान हैं। वे लोग बहुत सुन्दर और तन्दुरुस्त होते हैं। पहाड़ों पर चढ़ने में वे बहुत बड़ा परिश्रम करते हैं।

पैलिसटाइन के कृषक, माँस से इतना परहेज़ करते हैं कि उसको खाना तो दूर रहा, उसको छूते तक नहीं हैं। वे लोग अंगूर, खरबूज़ा, तरबूज़, कद्दू बहुत खाते हैं। इसके अतिरिक्त वे चावल, खमीरी रोटी का भी आहार करते हैं। उनके फलाहार के कारण ही उनके दाँत बहुत सफ़ेद होते हैं और उनका शरीर बहुत मोटा-ताज़ा होता है। उनमें बल और पुरुषार्थ बहुत पाया जाता है।

रूस के मज़दूर और किसान बड़े बलवान और परिश्रमी होते हैं। उनमें इतना पुरुषार्थ होता है कि नव्वे वर्ष के बुड्ढे भी मेहनत का काम करते हुए देखे जाते हैं। उनका भोजन बहुत साधारण होता है। वे लोग रोटी के साथ लहसुन का बहुत प्रयोग करते हैं।

सेराल्यून का जल और वायु मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए बहुत खराब है लेकिन वहाँ के निवासी फिर भी स्वस्थ और प्रसन्न चित्त पाए जाते हैं। उनके शरीर हट्टे-कट्टे और मज़-बूत होते हैं उनकी अवस्था भी बहुत बड़ी होती है। उनके इस

सुखी जीवन का कारण केवल यह है कि वे लोग फल बहुत खाते हैं।

समरना के निवासी कितने मज़बूत और ताकतदार होते हैं, इसका अनुमान इससे हो जायगा कि वहां का एक-एक आदमी पांच-पांच मन तक का बोझा उठा सकता है। अमेरिका के एक विद्वान् ने उनके सम्बन्ध में लिखा है कि वहाँ के लोगों का मज़बूत शरीर और परिश्रम देखकर मुझे आश्चर्य होता है। वे लोग फल और बहुत साधारण भोजन खाते हैं।

हस्पानियाँ में मूर मजदूरों की दशा देख कर कप्तान सी० एफ० चेस ने लिखा है कि उनमें शारीरिक शक्ति बहुत ही अधिक होती है। वे लोग बहुत भारी-भारी बोझ उठाते हैं और वे गेहूं की रोटियों के साथ अंगूर खाते हैं। वहाँ के लोगों के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वे लोग ५० मील तक बड़ी आसानी के साथ यात्रा कर सकते हैं और घोड़े की सवारियों के साथ दौड़ लगाने में भी आश्चर्यजनक काम करते हैं।

कुस्तुनतुनियाँ के मल्लाह और माशकी लोग योरप में हट्टे-कट्टे और बलवान होने के लिए प्रसिद्ध हैं। वे निर्भय और साहसी होने के साथ साथ बीर तथा बहादुर भी होते हैं। वे लोग ककड़ी, अंजीर, शहतूत, खजूर तथा अन्यान्य प्रकार के फल खाते हैं। रोटी और तरकारी खाने की भी उनमें प्रथा है। तुर्क लोग लड़ने में कितने बहादुर होते हैं यह बताने की आवश्यकता नहीं है। वे स्वस्थ और परिश्रमशील होते हैं। उनका स्वभाव बहुत साधारण और शरीर की बनावट बहुत सुन्दर होती है। उनको वानस्पतिक पदार्थों से बड़ा प्रेम होता है।

प्रायः देख जाता है कि जब साइकिल चलाने वालों की दौड़ होती है तो उनमें भिन्न-भिन्न विचारों के लोग सम्मिलित होते हैं। उन दौड़ों में जो सब से आगे गया है उसके सम्बन्ध में पता लगाने से मालूम हुआ है कि उसमें यह विशेषता थी कि वह फल और वानस्पतिक पदार्थों का भोजन करता था।

पैदल की दौड़ में देखा जाता है कि जो लोग मांसाहारी तथा तथा मदिरा आदि का सेवन करने वाले होते हैं, वे सदा दौड़ में पराजित होते हैं। इस प्रकार की जितनी भी बातें देखी जाती हैं, उनसे इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि फलों और वनस्पति में, मनुष्य-जीवन को पुरुषार्थ प्रदान करने वाली, एक अपूर्व शक्ति होती है।

संसार के भिन्न-भिन्न देशों और जातियों के भोजन का ब्योरा देकर ऊपर जो उनके बल और पराक्रम का निर्णय किया गया है, उससे भी यह प्रमाणित हो जाता है कि फलों और वनस्पति-पदार्थों का आहार करने से शरीर में कितनी शक्ति पैदा होती है। संसार के प्रायः सभी देशों में देखा जाता है कि उनके गरीब, मजदूर और किसान अपनी असमर्थता के कारण मांस-मदिरा का उपयोग नहीं कर सकते, किन्तु उनकी असमर्थता का परिणाम यह होता है कि उनको उससे स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त होती है।

महात्मा गाँधी ने इंगलैण्ड के सम्बन्ध में लिखा है—There are many men in England who have tried a pure fruit diet, and who have recorded the results of their experience. They were people who took to this diet, not out of religious scruples, but simply out of considerations of health.

इंगलैण्ड में ऐसे बहुत से आदमी हैं जिन्होंने फलाहार करके, फलों की परीक्षा की है। उनके फलाहार करने का कोई धार्मिक बन्धन नहीं था बल्कि उसका सम्बन्ध स्वास्थ्य से था, उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर फलों के भोजन की बड़ी प्रशंसा लिखी है।

फलों की इतनी उपयोगिता होने पर भी, यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि, हमारे शरीर के पोषण तथा उसकी समस्त शक्तियों के विकास की दृष्टि से निर्णीत वैज्ञानिक तथा उत्तम आहार विज्ञान के क्षेत्र में अभी फलाहार को उसका उचित स्थान नहीं दिया गया। अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि हमारे अन्य आहार के साथ साथ फलों का व्यवहार भले ही हो सके, किन्तु स्वतंत्र रूप से फलों को एक मात्र अवलम्ब न बनाना चाहिए। फलाहार को यह स्थान देने के विरुद्ध अनेक दलीलें पेश की जाती हैं। अभी यहाँ उनकी चर्चा अथवा उनके खंडन में प्रवृत्त न होकर हम उन पोषक आहारों की उपयोगिता ही की परीक्षा करेंगे जो हमारे दैनिक जीवन में स्वीकृत हैं। उनके दोषों को जान लेने के बाद फलों की उपयोगिता को हृदयंगम करने की ओर हमारी सहज ही प्रवृत्ति हो सकेगी।

पोषक पदार्थों में शहद एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। आहार-विज्ञान के प्रामाणिक अधिकारियों का कहना है कि हमारे दैनिक भोजन में शक्कर का अंश अवश्य होना चाहिये, शहद इसी अंश की पूर्ति में सहायक हो सकती है। लेकिन शक्कर की जितनी मात्रा हमें शहद से मिलती है उतनी ही कुछ मीठे फलों से भी मिल सकती है। उदाहरण के लिए छुहारे और खजूर का नाम लिया जा सकता है। मीठे फलों का व्यवहार करने में लाभ तो उतना ही है जितना शहद के व्यवहार में है,

साथ ही शहद प्राप्त करने में हमें जिस निर्दयता का परिचय देना पड़ता है उससे भी हम बच जायँगे। स्मरण रहे कि शहद की मक्खियाँ अपने लिए जाड़ा के आहार के रूप में ही शहद इकट्ठा करती हैं और हम उन्हें उनके आहार से वंचित करके यह वस्तु अपने व्यवहार में लाते हैं।

पोषक पदार्थों में ज़ैतून के तेल का भी नाम लिया जाता है। अगर यह शुद्ध रूप में प्राप्त किया जा सके तो निस्संदेह उपयोगी है। ज़ैतून के तेल में चर्बी का अंश अधिक होता है और इसीके लिए उसका महत्त्व है। लेकिन बादाम, अख़रोट आदि अनेक पदार्थों से भी हम यह आवश्यक चीज़ प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी दशा में जिस वस्तु के शुद्ध रूप में मिल सकने की आशा न हो उसका व्यवहार करने और जिस वस्तु के सम्बन्ध में कोई सन्देह करने की गुंजाइश न हो उसकी ओर से आँख मूँदने में बुद्धिमानी नहीं हो सकती।

पोषक पदार्थों में दूध का महत्त्व सभी आहार-शास्त्रियों ने स्वीकार किया है। निस्सन्देह माँ का दूध बालक के लिए बहुत हितकारी होता है और दूध की सृष्टि में सृष्टि-रचयिता का उद्देश्य केवल बालकों को आहार-प्रदान होने के कारण ही शायद मनुष्य की अधिक अवस्था होने पर दूध वृद्धिशील शरीर की समस्त आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने में असमर्थ हो जाता है; माँ का दूध एक निश्चित अवधि के बाद समाप्त हो जाता है। दूसरे शब्दों में यही बात इस तरह कही जा सकती है कि यदि तरुण मनुष्य को दूध की आवश्यकता होती तो प्रकृति उसे माँ का ही दूध दिया करती। ऐसी अवस्था में गाय का दूध पीने की भी आवश्यकता हम नहीं समझते। इस दूध के विरुद्ध दो दलीलें पेश की जा सकती हैं (१) गाय का दूध गाय के बछड़े

के लिए बनाया गया है। बछड़े के शरीर की रक्त-सम्बन्धी तथा रसायनिक बनावट मनुष्य के शरीर की इस प्रकार की बनावट से बिलकुल भिन्न है। ऐसी दशा में गाय के दूध की रसायनिक रचना मनुष्य के लिए ठीक ठीक उपयुक्त नहीं हो सकती और उसे अपने व्यवहार के अनुकूल बनाने के लिए हमें बहुत-सी दूसरी चीज़ों को मिलाकर मनुष्य के दूध से मिलता-जुलता बनाना पड़ता है; गाय का दूध बेशक गाय के बछड़े के लिए अच्छी चीज़ है। गाय के दूध में एक दोष और है। ज़ैतून के तेल की तरह कभी कभी वह भी बहुत अशुद्ध रूप में मिलता है। इ० यफ० ब्रश, यम० डी० नाम के एक सज्जन ने मनुष्यों और पशुओं के राजयक्ष्मा रोग के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है। उसमें एक स्थल में वे कहते हैं—

"दैनिक कार्य्य के कारण मैं डेरी के पशुओं के घनिष्ट सम्पर्क में आता हूँ। मैंने स्वभावतः इनके रोगों के सम्बन्ध में विशेष ध्यान दिया है और मैं यह कह सकता हूँ कि डेरी की अधिकांश गायों में राजयक्ष्मा का रोग रहता है। मैं यह भी जानता हूँ इस रोग के निवारण के लिए कभी कोई प्रयत्न नहीं किया जाता।"

इसी लेखक ने अपनी "दूध" नाम की पुस्तक में लिखा है:—रोगी पशु से प्राप्त किए जाने वाले दूध के द्वारा रोग एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचता है। दूध शुद्ध भी हो तो तरह तरह के रोगी व्यक्तियों की छूत से भी वह रोग-संचारक हो जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि तरुण व्यक्तिओं को अगर दूध की अवश्यकता होती तो प्रकृति उन्हें स्वयं देती। तरुणों को प्रोटीन और खनिज लवण की विशेष आवश्यकता होती है।

दूध में इन दोनों वस्तुओं का पर्याप्त मात्रा में मिश्रण नहीं होता है।

(२) गाय के दूध के व्यवहार के विरुद्ध दूसरी दलील यह है कि हम गाय के बछड़े का दूध छीन कर अपने पेट में डालते हैं; जिस दूध को पीकर बछड़ा पुष्ट और बलवान होता तथा हमारे कृषि-कार्य्य को बहुत सहायता पहुँचाता उसे हम पीकर उसको निर्बल और रोगी तो बनाते ही हैं, अपने को भी लाभ पहुँचाने के स्थान में अधिकतर हानि ही पहुँचाते हैं। जो लोग गो-रक्षा के बहुत बड़े समर्थक हैं और उसके लिए गो-हत्या-कारियों से लड़ते हैं वे सबसे पहिले अपने ही सच्चे गो-रक्षक होने का प्रमाण दें और वह यह कि बछड़े को अपनी माता का दूध उतनी मात्रा में और उतने समय तक पीने दें जितने का निर्देष स्वयं प्रकृति ने किया है। दूध के स्थान में हम सहज ही फलों का रस दे सकते हैं जिसमें न किसी प्रकार अशुद्धता की सम्भावना है और न जिसको प्राप्त करने में हम पर निर्दयता का आरोप ही किया जा सकता है।

पोषक पदार्थों में मक्खन की भी गणना है। लेकिन यदि हम गाय के दूध का ही वहिष्कार कर दें तो मक्खन का अस्तित्व ही न रह जायगा। मक्खन का न रहना किसी प्रकार शोचनीय न होगा, क्योंकि यह दूध के इतना भी लाभ-कारी आहार नहीं। दूसरे तैलाक्त पदार्थों की तरह यह भी कठिनता से हज़म होता है। बेशक शिकायत यह नहीं है कि इससे पेट में दर्द होता है, हमारा कथन है कि यह उन परिवर्तनों को ग्रहण नहीं करता जिन्हें ग्रहण करना प्रत्येक आहार के लिए आवश्यक होना चाहिये। यह मछली के तेल के दूध के रूप में रक्त में अपरिपक्व अवस्था ही में प्रवेश करता है और खाल

में चर्बी के रूप में इकट्ठा होता है। इसमें पोषण की शक्ति भी बहुत अल्प है, जो इसमें मिले हुए द्रव्यों की प्रकृति से ही समझा जा सकता है। इससे तीन से लेकर पाँच प्रति सैकड़ा केसीन और इतने का दुगना पानी पाया जाता है शेष पदार्थ जो इसमें विद्यमान रहता है तैलाक्त तत्व है।

जो लोग मक्खन अधिकतर खाते हैं उनके शरीर से एक प्रकार की गंध आती है जिसका अनुभव उन लोगों को सहज ही हो सकता है जो पशुओं का आहार नहीं करते।

कुछ लोग मक्खन में नमक मिलाकर खाते हैं; लेकिन यह ठीक नहीं। बहुत से उदर-विकार-ग्रस्त लोग चर्बी से तो बचते हैं लेकिन अज्ञात रूप से मक्खन का व्यवहार करके वे वहीं जा पहुँचते हैं। बहुत से लोग दूध पीने से डरते हैं इसलिए कि वह कठिनता से पचता है परन्तु मक्खन के प्रयोग द्वारा भी वही शिकायत हो सकती है।

उक्त निवेदन से यह स्पष्ट है कि मक्खन से जितना हम लाभ समझते हैं उतना होता नहीं।

बहुत से लोग, जो मांस नहीं खाते, शक्ति प्राप्त करने के लिए अण्डों का व्यवहार करते हैं। माता की मांसा-निषेधाज्ञा के कारण महात्मा गाँधी ने भी इंगलैण्ड में कुछ दिनों तक अण्डों का व्यवहार किया था क्योंकि उनके मित्रों का यह आग्रह था कि केवल अन्नाहार करके वे इंगलैण्ड में जीवित न रह सकेंगे। अण्डों में पित्त पैदा करने की प्रवृत्ति होती है। एक सप्ताह तक प्रतिवार भोजन करने के बाद अण्डे खाने से आँखों में एक तरह की सफ़ेदी आ जाती है, जो पित्त के अस्तित्व की सूचना देती है। अण्डों में गंधक भी प्रचुर मात्रा में रहता है। उनका एक हिस्सा सफ़ेदी लिए और

दूसरा पीलापन लिए होता है। सफेदी लिए हुये हिस्सा अगर मधुरता से पकाया जाय तो पीले हिस्से से कम हानिकारक होता है। पीले हिस्से में तीस प्रति सैकड़ा तैलाक्त पदार्थ होता है। अगर अण्डे खाये ही जायँ तो वह ताज़े हों फिर भी अधिक मात्रा में उनका सेवन न करना चाहिए और उनका व्यवहार अधिकतर जाड़ों में ही होना उचित है। लेकिन जो शिकायत बाज़ार की शहद, ज़ैतून के तेल, दूध आदि की अशुद्धता के सम्बन्ध में की जा सकती है वही अण्डों के बारे में भी सम्भव है। जिन चिड़ियों का अण्डा व्यवहार में लाया जाय उनकी सफाई की ओर हमें ध्यान देना चाहिये; वे स्वच्छ स्थान में रहें, प्रचुर मात्रा में ताज़ा पानी पियें, उन्हें शुद्ध हवा मिले और वे अच्छा अन्न खाने को पावें। खेद है, इसका ठीक उल्टा देखने में आता है और चिड़ियों जो कुछ भी तथा जहाँ कहीं भी मिल गया खा लेती हैं। इस गंदगी का असर अण्डों पर पड़े बिना कैसे रहेगा और जब अण्डों में दोष होगा तो उनसे अण्डे खाने वालों का कष्ट अवश्य ही बढ़ेगा।

जो लोग जिगर की मंदता के रोगी हैं उन्हें मक्खन और अण्डों से दूर रहना चाहिए और जिन्हें जिगर अच्छी हालत में बनाये रखना है उन्हें यह दोनों चीज़ें खाते समय यह स्मरण रखना चाहिये कि वे ऐसा करके अपनी उस विशेषता को खोने की ओर पैर बढ़ा रहे हैं। अण्डों में प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक होती है, लेकिन यही प्रोटीन बादाम, अखरोट तथा अनेक प्रकार के शाकों में पाया जा सकता है।

नैतिक दृष्टि से भी अण्डों का खाना विचारणीय है। ज़रा सोचिये तो सही, जितने अण्डे हम खाते हैं क्या उतने ही जीवधारियों का संसार में आना नहीं रोकते। अण्डों को खाते

समय यदि हम यह भी सोचें कि हम इतने जीवों की हत्या कर रहे हैं तो शायद हमारी उदर-पूर्ति अथवा स्वास्थ्य-सिद्धि की लालसा अपनी ही आंखों में निर्दयता पूर्ण दिखलायी पड़े। मानव-जीवन के इतिहास में एक समय ऐसा था जब जीवों का प्राण-हरण करके ही हम अपने आपको जीवित रख सकते थे। लेकिन आज जब कि हमें अपना पेट भरने के अनेक साधन उपलब्ध हैं और हम शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विकास करने के लिये उपयुक्त आहार का चुनाव कर सकते हैं तब भी उसी प्राचीन प्रवृत्ति को बनाये रक्खें तो कहाँ तक उचित है? विशेष करके अण्डों ही की सी शक्ति-दायनी विशेषता से सम्पन्न फलों आदि के रहते भी हमारा ऐसा करना तो भयंकर अन्याय हो जाता है।

पनीर में चर्बी और प्रोटीन की प्रचुर मात्रा पायी जाती है लेकिन इसमें अनेक दूषण हैं। (१) यह कठिनता से पचता है (२) इसमें वे सभी त्रुटियाँ होती हैं जो दूध में हो सकती हैं। कहा जाता है कि इसमें पाचक शक्ति बहुत अधिक होती है और स्वयं भले ही न पचे, किन्तु अन्य चीज़ों को अवश्य ही पचा देती है। लेकिन यह भ्रम है। पनीर में नमक मिलाकर उसे कुछ अधिक समय तक चलाने की कोशिश की जाती है। इस रूप में तो यह अत्यन्त अस्वास्थ्यकर आहार हो जाता है। पनीर में जो प्रोटीन पाया जाता है वह भी बादाम, अखरोट आदि से सहज ही मिल सकता है।

ऊपर जो कुछ निवेदन किया जा चुका है उससे यह प्रगट होता है कि जिन वस्तुओं को हम पोषक समझते हैं उन्हें प्राप्त करने में कभी कभी निर्दयता का सहारा तो लेना ही पड़ता है,

साथ ही उन्हें विशुद्ध रूप में प्राप्त करना बहुत कठिन और कभी कभी तो असंभव होता है। फलों की पोषक शक्ति का उल्लेख तो अन्यत्र विस्तार पूर्वक होगा, यहाँ साधारण तौर से यही बतलाने की चेष्टा की गयी है कि उल्लिखित पोषक पदार्थों को त्याग कर भी हम अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सुरक्षित बनाये रख सकते हैं।

अगले अध्याय में हम यह बतावेंगे कि जो अन्य पदार्थ वनस्पति, अन्न आदि हमारे शरीर की शक्तियों का विकास करने वाले बताये जाते हैं, वे किन त्रुटियों से पूर्ण हैं।

शाक-भाजी की तुलना में फलाहार

मांसाहार की अस्वाभाविकता के सम्बन्ध में पहले ही निवेदन किया जा चुका है। उससे पाठकों की समझ में यह अच्छी तरह आ गया होगा कि मानव जीवन के संरक्षण अथवा विकास के लिए मांस बिलकुल ही आवश्यक नहीं है। फलाहार की सर्वोत्तमता के विषय में संसार के अनेक विद्वानों की सम्मतियाँ भी पिछले पृष्ठों में दी जा चुकी हैं। यहाँ मांसाहार के सम्बन्ध में कुछ भी अधिक न लिख कर हम केवल उन अन्य आहारों की सदोषता अथवा निर्दोषता की परीक्षा करेंगे जो हमारे जीवन में प्रभावशाली स्थान रखते हैं। उन आहारों में शाक-भाजी, अन्न तथा इन दोनों के सहायक रूप में मसाले उल्लेख-योग्य हैं। इस सम्बन्ध में यहाँ जो कुछ निवेदन किया जायगा उससे आशा है, फलाहार की सर्वोत्तमता की बात और भी स्पष्ट हो जायगी।

डाक्टर टिबुल्स ने "भोजन और स्वास्थ्य" नामक पुस्तक में लिखा है:—जिनका स्वास्थ्य अच्छा है। जिन्हें पेट की कोई शिकायत नहीं है और जो मुस्तैदी से काम में लगे रहते हैं वे सब तरह की तरकारियाँ, चाहे वे किसी भी तरह पकाई गई हों, बिना किसी हानि की आशंका के खा सकते हैं। हाँ केवल इतना ध्यान रखना चाहिए कि बहुत अधिक मात्रा में न खायें।"

इससे यह स्पष्ट है कि डाक्टर महोदय साधारण अथवा ख़राब स्वास्थ्य रखने वालों को सब तरह की तरकारियां खाने की अनुमति नहीं देते। यह एक महत्वपूर्ण बात है जिसे हम सब लोगों को स्मरण रखना चाहिए और जायकेदार दिल लुभाने वाली तरकारियाँ खाकर अपने आप को संकट में न डालना चाहिए। वास्तव में जब नया मौसिम नई नई शाक-भाजियों को लेकर आता है और बाज़ार उनकी ताजगी से ताज़ा हो जाता है तब उन्हें अपनी रसोई में शामिल करने का प्रलोभन दुर्निवार हो उठता है और मजे की बात यह है कि जो तरकारी सब से अधिक हानिकारक होती है उसी को देखकर मुँह में पानी भर आता है। लेकिन चाहे जैसे हो हमें अपनी रसना को काबू में रखना होगा, अन्यथा डाक्टर की शरण लेने के लिए वाध्य होना पड़ेगा।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि शाक-भाजी भी हमारे जीवन का एक आधार है और उसमें अनेक पोषक द्रव्यों का अस्तित्व है, जिनसे शरीर की रक्षा हो सकती है। उनमें से अनेक में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। लेकिन प्रोटीन की अधिकता ही उन्हें उतना हानिकारक बना देती है जितना स्वयं मांस होता है। ऐसी तरकारियों में मांस की तरह

यूरिक एसिड नामक विष उत्पन्न करने की शक्ति होती है, जिसके कारण शरीर में कार्य्यकारिणी शक्ति का अभाव हो जाता है।

पकाई जाने के कारण तरकारियों की अधिकांश शक्ति का ह्रास जाता है। यही एक बात ऐसी है जो शाक भाजियों के आहार को फलाहार की अपेक्षा अल्प महत्ववाला बना देता है।

तरकारियों के साथ जो मसालों का संसर्ग कराया जाता है, उससे उनकी उपयोगिता बढ़ने के स्थान में घट जाती है, क्योंकि तब एक बुराई के स्थान पर दो बुराइयाँ इकट्ठी हो जाती हैं। मसाले से होनेवाली हानियों की चर्चा हम आगे करेंगे। निस्संदेह, मांसाहारी होने की अपेक्षा शाकाहारी होने से कहीं अच्छा है किन्तु फलाहारी अधिक होना अच्छा है। प्रकृति की गोद में विकास पाकर परिपक्व होने वाले फल अपने प्राकृतिक रूप में अधिक लाभकारी होंगे या सर्वथा अप्राकृतिक ढंग से आग पर नष्ट-शक्ति हो जाने वाली तरकारियाँ हमारा हित अधिक मात्रा में करेंगी, इसके सम्बन्ध में अब विशेष कहने की आवश्यकता नहीं।

हम लोगों में जो तरकारियाँ प्रचलित है वे हैं बैंगन, भिन्डी, घुइयां, गोभी का फूल, टिमाटर, आलू, केले की छीमी, कुम्हड़ा, लौकी, पालक, मेथी, सोया, आदि। इनमें से घुइयां, भिन्डी आदि में प्रोटिन को और टिमाटर आलू कुम्हड़ा आदि में स्टार्च की प्रचुर मात्रा होती है। शाक जिस तरह पकाये जाते हैं उसका परिणाम यह होता है कि उनमें लोहा और नमक की जो कुछ विशेषतायें हैं भी वे उस पानी में चली जाती हैं जिसमें शाक पकाये जाते हैं। लहसुन प्याज अगर कच्चे खायें तो कुछ रोगों में लाभ भी होता है किन्तु उन्हें भी पकाकर हम

शक्तिहीन बना देते हैं। कुल बातों पर विचार करने से यह प्रगट होता है कि अनेक मसालों के मिश्रण से तरकारियाँ स्वादिष्ट भले ही बना ली जायँ किन्तु मनुष्य का प्राकृतिक आहार होने का दावा वे नहीं कर सकतीं।

ऊपर जो कुछ निवेदन किया गया उससे वनस्पतियों की उत्तम आहार समझे जाने की योग्यता नहीं सिद्ध होती; सच पूछिए तो उनके सम्बन्ध में सभ्य समाज में पागलपन से भरा हुआ जो शौक़ पैदा हो गया है और उस शौक़ के कारण हम उनके स्वरूप को अधिकाधिक कृत्रिम तथा विचार पूर्ण करने के जैसे अभ्यस्त हो गये हैं वह हमारे वर्त्तमान स्वास्थ्य की शोचनीयता के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी है। ऐसी स्थिति में वनस्पतियों का अपने आहार-क्षेत्र से सर्वथा विसर्जन करके और उनके स्थान में फलों का स्वागत करके हम अपने स्वास्थ्य का, किसी डाक्टर या वैद्य की सहायता के बिना ही, बहुत कुछ सुधार कर सकते हैं।

अन्न की तुलना में फलाहार

संसार में अधिकांश मनुष्य अन्न ही पर अवलम्बित रहकर जीते हैं। डाक्टर टिबुल्स ने अपने 'भोजन और स्वास्थ्य' नामक पुस्तक में अन्न की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा कि गेहूं तथा दूसरे अन्न मनुष्य के गृह-कार्य्यों से इतना अधिक सम्बन्ध रखते हैं कि यह कहने में किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं जान पड़ती कि यदि किसी वर्ष अन्नों की फसल बिलकुल नष्ट हो जाय तो पृथ्वी पर निवास करने वाले प्रतिशत नब्बे मनुष्यों के जीवन का अंत हो जाय। डाक्टर राउलाथम का कहना है कि गेहूं की रोटी में जीवनी-शक्ति-संचार करने की इतनी

अधिक क्षमता है कि यदि उसे जीवन का अवलम्बन कहें तो अत्युक्ति न हो। जहाँ कुछ लोगों ने उसका मानव-आहारों के क्षेत्र में इतना ऊँचा स्थान निर्धारित किया है, वहाँ कुछ विद्वानों का यह मत भी है कि वह मनुष्य के लिए बिलकुल ही बेकाम है।

गेहूं में प्रोटीन की प्रचुर मात्रा पायी जाती है। पिछले पृष्ठों में हम यह बता आये हैं कि हम अपने आपको स्वस्थ रखने वाले जिस किसी भी आहार का चुनाव करें उसमें प्रोटीन का अस्तित्व अत्यन्त आवश्यक है। इस दृष्टि से गेहूं की उपयोगिता निर्विवाद जान पड़ती है। फिर भी इस सम्बन्ध में हम पाठकों का ध्यान दो महत्त्वपूर्ण बातों की ओर आकर्षित करेंगे। (१) पहली बात तो यह कि गेहूं का आटा जिस रूप में हम व्यवहार में लाते हैं उसमें गेहूं की एक विशेषता का सर्वथा लोप हुआ रहता है! चलनी से चालकर हम गेहूं के छिलके को चोकर या भूसी के रूप में आटे से अलग कर देते हैं। हमारी वर्त्तमान सभ्यता का कहना है कि आटे की सफ़ेदी के भीतर भूरे रंग की अगर कोई चीज़ बाक़ी रह गयी तो समझ लो कि जंगली क़ौमों में तुम्हारा नाम लिखा गया। सभ्यता देवी की इसी चेतावनी के भय से हमारा नाज़ुक-मिज़ाज बाबू-सम्प्रदाय अधिक से अधिक पतले आटे का शौक़ीन हो रहा है और साथ ही बदले में क़ब्ज़ तथा उससे उत्पन्न होने वाली सैकड़ों बीमारियों का शिकार भी बनता जा रहा है।

(२) अब दूसरी बात पर विचार कीजिये, अर्थात् उस अवस्था पर जिसमें गेहूं का चोकर आटे से अलग नहीं किया जाता। गेहूं के छिलके को जला कर देखा गया है कि उसमें फ़ास्फोरिक एसिड, पोटाश, तथा दूसरे खनिज पदार्थों का किंचित् अंश विद्यमान रहता है। गेहूं की ऊपरी तहों में,

उसके अन्य अंशों की अपेक्षा, नाइट्रोजन का अंश विशेष मात्रा में पाया जाता है। पतले आटे में गेहूं की इन सब विशेषताओं का अभाव हो जाता है और इस कारण उस आटे से पोषक-शक्ति मिलना तो दूर रहा, उदर-विकारों की प्राप्ति ही होती है। कारण यह कि सफेद आटे में स्टार्च की मात्रा अधिक हो जाती है और उसको शरीर का अंश बनाने के पहले शक्कर का रूप देने के लिये मेदे को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है, क्योंकि शरीर द्वारा स्टार्च का उपयोग स्टार्च ही के रूप में नहीं हो सकता; उसे शक्कर के रूप में परिणत होना चाहिये। उसको इस रूपान्तर-ग्रहण की प्रक्रिया में अनेक अवस्थाओं को पार करना पड़ता है। जब चोकर या भूसी भी आटे में मौजूद रहती है तब उक्त प्रक्रिया में कुछ सरलता आ जाती है; चोकर में एक प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न करने की शक्ति होती है जिससे पेट को सफाई में सहायता मिलती है।

इन डाक्टर महोदय का यह भी अनुभव है कि जिन आहारों में प्रार्थिव तत्त्व विशिष्ट मात्रा में होता है उनके सेवन से मनुष्य मन्द-बुद्धि और प्रतिभाहीन हो जाता है और जो लोग निम्न मनोवृत्ति के तथा चिड़चिड़े स्वभाव के होते हैं वे प्रायः उन्हीं भोजनों को ग्रहण करते हैं जिनमें पार्थिव तत्व अधिक मात्रा में होता है। जो बात गेहूं के लिये सत्य है वही कम या अधिक मात्रा में अन्य अन्नों के लिये भी सही है। ऐसी दशा में यह मत किस प्रकार टिक सकता है कि हमारे आहारों में अन्नों की अनिवार्य्य रूप से आवश्यकता है। वास्तव में ताजे फल तथा बादाम और अखरोट आदि के सेवन से प्रोटीन तथा स्टार्च की इच्छित मात्रा मिलने के साथ साथ उन समस्त त्रुटियों से पूरा पूरा बचाव हो सकता है जो अन्नाहार के साथ दूध और पानी का सा सम्बन्ध रखती है।

शरीर-विज्ञान की दृष्टि से देखने पर भी फलाहार की महत्ता निर्विवाद रूप से सिद्ध होती है। हमारे आहार में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, तथा चर्बी तीनों तत्वों की आवश्यकता होती है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि फलाहार से इन तीनों तत्वों की प्राप्ति शरीर को हो सकती है। फलाहार की इस समर्थता के साथ यह भी स्मरण रखने योग्य है कि उससे न तो मांसाहार के कारण पेट में अनेक अपच्य वस्तुओं की तरह कोई कठिन चीज़ ही पेट में जाती है और न शाकाहार में सम्मिलित बहुत सी रेशेदार चीज़ों के ढंग का कोई अवांछनीय पदार्थ हो वहाँ पहुँच पाता है। इन सब बातों के अतिरिक्त फलाहार में एक विशेषता और है। फलों के बारे में यह भय नहीं हो सकता कि पेट में वे उचित से अधिक मात्रा में पहुँच जायँगे, जैसा स्वादिष्ट भोजनों के विषय में प्राय: डर रहता है। साथ ही, फल जल्दी पच जाते हैं और उनमें पार्थिव तत्व भी बहुत थोड़ी मात्रा में रहता है। फलों की इतनी उपयोगिता से परिचिति हो जाने पर भी यदि अब भी किसी को संदेह हो और फलाहार की उत्तमता के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने की इच्छा हो तो उसे कालीफोर्नियाँ विश्वविद्यालय के अध्यापक एम० ई० जाफ़ा के अनुसन्धानों का अध्ययन करना चाहिए। अमरीका के कृषि-विभाग ने उनकी खोजों को प्रकाशित किया है, जो सर्वाङ्गपूर्ण होने के साथ-साथ आहार-विज्ञान के इतिहास में एक नवीन युग की घोषणा करती हैं। 'फलाहारियों और चीन-वासियों में पोषण-सम्बन्धी अनुसंधान' नामक अपने एक निबन्ध में वे लिखते हैं :—

"उल्लिखित सामग्री की परीक्षा करने पर तथा साधारणतया स्वीकृत मानदण्डों के साथ परिणामों की तुलना करने

पर यह प्रगट होता है कि आलोच्य व्यक्तियों को पूर्ण पोषक आहार नहीं मिला, यद्यपि यह बात भी सही है कि उनका वज़न स्वभावत: कम होता है। लेकिन जब हम सोचते हैं कि दो अधेड़ व्यक्ति सात वर्ष तक फलाहार पर ही रहे हैं और उन्हें अच्छे स्वास्थ्य में तथा अधिक कार्य्य करने के योग्य पाते हैं तब कोई निर्णय प्रकट करते हुए हमें संकोच होता है। तीन आलोच्य बच्चे, जो फलाहार करते रहे, और वज़न में औसत से कम होने पर भी स्वास्थ्य और शक्ति के सभी लक्षणों से युक्त थे, साधारण स्वस्थ बालकों की तरह सारे दिन दौड़ते और खेलते कूदते थे और लड़कों के होनेवाली सर्दी आदि तरह-तरह की शिकायतों से बिलकुल मुक्त बताये जाते थे।"

अध्यापक जाफ़ा ने अपने निबंध में आगे चलकर यह सिद्ध कर दिया है कि फलाहार के द्वारा उतना ही बल और पोषण प्राप्त किया जा सकता है जितना अन्य किसी प्रकार के आहार से। उनका कहना है कि उक्त आलोच्य फलाहारी केवल दो बार आहार ग्रहण करते थे। उनका यह भी मत है कि पकाया हुआ भोजन जितनी मात्रा में ग्रहण किया जाता है उससे कम ही इन फलाहारियों को आवश्यक होता था। विशेष उल्लेख योग्य बात यह है कि एक फलाहारी तो वज़न में भी बढ़ गया; तीन महीने के भीतर ही उसने सात पौंड वज़न की वृद्धि कर ली! अपनी इन खोजों के परिणाम स्वरूप जाफ़ा महाशय का मत है कि फलों को सहायक आहार का स्थान न देकर स्वतंत्र आहार के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

'स्वास्थ्य और भोजन' नामक अपनी पुस्तक के १७४ वें पृष्ठ पर डा० टिबुल्स कहते हैं—

"ताज़े फलों का महत्त्व, विशेष करके शहर वालों के लिए, बहुत अधिक है। फलों में जो नमक विद्यमान रहता है वह भूख की वृद्धि करता है। सैलिवा (मुँह के भीतर मौजूद रहने वाला द्रव पदार्थ) का प्रवाह उत्तेजित करके वह पाचन-क्रिया में सहायक होता है। पाचन-क्रिया को द्रुत करने वाले उदर के भीतर के द्रव पदार्थ को भी यह नमक बढ़ाता है। जब फल आँतों के भीतर पहुँचते हैं तब जिगर, अंतड़ियों की गाँठों और पेशियों से द्रव पदार्थ उत्पन्न होता है; रक्त पर भी उनका यथेष्ट प्रभाव पड़ता है।"

प्रकृति ने मनुष्य को न मांसाहारी बनाया है और न अन्नाहारी; वास्तव में वह फलाहारी जन्म से ही है। किन्तु जिह्वा के शासन ने इस बुद्धिमान पशु को अपने भोजन का स्वाद अनेक उपायों से बढ़ाने की हिकमत ढूँढने की ओर प्रवृत्त किया और इसमें वह इतना सफल हुआ कि उसके द्वारा पाक-शास्त्र नामक एक विज्ञान ही की सृष्टि हो गयी, जिसके अनुसार यदि भोजन तैयार कराया जाय तो शायद सबेरे से लेकर शाम तक पेट-पूजा के अतिरिक्त मनुष्य को दूसरे कामों के लिए अवकाश ही न मिले! 'मानव जीवन का विज्ञान' नामक अपनी पुस्तक में डाक्टर ग्रैहम महोदय कहते हैं—

"यदि मानव प्रकृति की सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट अवस्था का ख्याल किया जाय तो यह एक व्यापक सिद्धान्त के रूप में गृहीत किया जा सकता है कि आग की सहायता से भोजन का कृत्रिमता-पूर्ण परिपाक मनुष्य शरीर के वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक हितों के प्रति कुछ मात्रा में याघातकारी है।"

डाक्टर ग्रैहम तो अन्य अनेक दृष्टियों से भी बिना पकाया हुआ आहार अधिक मात्रा में खाने की सिफ़ारिश करते हैं। उनका कहना है कि उस अवस्था में मनुष्य अपने दाँतों का अधिक उपयोग करेगा, वह आहार को अधिक अच्छी तरह चबाएगा, जिससे पाचन-क्रिया को समुत्तेजित करने योग्य अधिक सैलिवा की उत्पत्ति हो सकेगी; गरम गरम भोजन करने की हानिकारक आवश्यकता से वह बच जायगा, तथा आहार की उचित मात्रा का अतिक्रमण वह नहीं करेगा।

फलाहार को स्वतंत्र आहार के रूप में ग्रहण कर लेने से एक बहुत बड़ा लाभ तो यह है कि आग की आँच में, विशेष कर गर्मी के दिनों में, अपने स्वास्थ्य और सौन्दर्य्य दोनों का हवन करने के लिए विवश की जाने वाली हमारी देवियों का उद्धार हो जायगा। हमारी महिलाओं के रुग्ण होने का एक बहुत बड़ा कारण है उनका अपने समय का बहुत बड़ा हिस्सा धुएँ से व्याकुल आँखों को मींजने में गँवा देना। इस अनिवार्य कठिनाई के कारण स्त्रियों को शिक्षा और आत्मोन्नति के साधनों का उपयोग करने के लिए कुछ समय ही नहीं रह जाता। गार्हस्थ जीवन में अशिक्षित और रुग्ण पत्नी पति के लिए अभिशाप स्वरूप है और पुरुष को सदैव यह प्रयत्न करना चाहिए कि उसकी स्त्री यथासम्भव अंधकार में से निकल कर प्रकाश में आवे। फलाहार का प्रचार इस प्रकार के प्रयत्न का एक स्वरूप हो सकता है।

फलों की उपयोगिता सिद्ध होने पर भी यह विचार करना शेष रह गया है कि फलाहार ख़र्चीला है या नहीं। इसमें शक नहीं कि यदि एक रुपये का मांस मोल लिया

जायगा तो उसमें प्रोटीन की जितनी मात्रा होगी उतनी एक रुपये के फल में नहीं मिलेगी । फिर भी इसमें शक नहीं कि शक्ति की मात्रा दोनों आहारों में समान मात्रा ही में मिलेगी, यदि हम यह ध्यान में रक्खें कि जहाँ तक संभव हो ताज़े फल मोल लिये जायँ, विशेष करके सूखे फल, छुहारे, किशमिश आदि। बादाम अखरोट आदि पर विचार किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि इससे उतना ही प्रोटीन मिल सकेगा जितना मांस से । अतएव, यदि हम ताजे फलों और बादाम अखरोट आदि को मिला कर खाएं तो जितना दाम खर्च करके हम शक्ति की मात्रा-विशेष का संग्रह करते हैं उतने ही दाम में उतनी ही शक्ति हमें इन फलों से प्राप्त हो सकेगी ।

हमने पिछले पृष्ठों में जो कुछ निवेदन किया है उसका सारांश यही रहा है कि हमें फलों को स्वतंत्र आहार का रूप देना चाहिए। फिर भी अनेक शताब्दियों के अभ्यास ने हमें जिस आहार-पद्धति का प्रेमी बना दिया है वह सहज ही त्यागी नहीं जा सकती, यह हम अच्छी तरह जानते हैं । मनुष्य की समस्त आदतों में, जिन्हें उसने अपनी जीभ के स्वाद के लिए अपना लिया है, सबसे कठिन आदत है अपना आहार पकाकर खाने की। किन्तु, इसमें सन्देह नहीं कि जितनी ही मात्रा में यह बात सही है उतनी ही मात्रा में यह भी सच है कि इससे उसके स्वास्थ्य और बल का बहुत अधिक ह्रास हुआ है; उसके शरीर को अधिक दृढ़ता के साथ रोगों ने अपना अड्डा बना लिया है, और अपनी प्राकृतिक अवस्था को प्राप्त करने के लिए उसे इस आदत से पिण्ड छुड़ाना ही पड़ेगा ।

"यह स्मरण रखने योग्य बात है कि प्रत्येक प्रकार का फलाहार, मनोरंजन या स्वाद के लिये नहीं, बल्कि स्वतंत्र आहार के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। सब प्रकार का पकाया हुआ भोजन, वह कितने ही अच्छे ढंग से क्यों न पकाया जाय, पेट की, बिना पकायी हुई वस्तुओं को पचाने की, शक्ति का ह्रास कर देता है। इसलिए जब तक हम पकाया हुआ भोजन ग्रहण करने के आदी हैं तब तक फलों और दूसरी चीज़ों को—जिन्हें हम उनकी प्रकृत अवस्था में ग्रहण करते हैं—खाते समय हमें सावधान रहना चाहिए।"

ग्रैहम महोदय की उक्त चेतावनी का अर्थ यही है कि जो मांसाहारी है वह क्षण भर ही में फलाहारी हो जाने का उद्योग न करे, क्योंकि इस तरह के प्रयत्न में कुछ कष्ट अवश्य ही हो सकता है, जो शायद आगे चलकर फलाहार की उपयोगिता को व्यर्थ सिद्ध करने की कोशिश करे। जितनी भी हमारी आदतें हैं, उन्हें त्यागने में आकस्मिकता से काम न लेना चाहिए; वे धीरे धीरे छुड़ायी जायँगी तभी स्थायी रूप से हमसे पृथक हो सकेंगी।

नमक तथा मसाले

यदि शाकाहार और अन्नाहार दोनों का त्याग कर दिया जाय तो मसालों के व्यवहार की शायद कोई आवश्यकता ही न पड़े। लेकिन संभव है, मसालों के व्यवहार की हानियाँ जान लेने से उक्त दोनों प्रकार के आहारों को त्याग देने की प्रवृत्ति स्वभावतः उत्पन्न हो, इस दृष्टि से मसालों की हानियों का यहाँ उल्लेख कर देना भी आवश्यक जान पड़ता है। कहा

जाता है कि मसाले साधारण भोजन को रुचिकर और स्वादिष्ट बना कर भूख बढ़ा देते हैं, किन्तु यदि आहार उत्तम हो और मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक दशा में हो तो आहार को ग्रहण-योग्य बनाने की आवश्यकता ही न रह जाय। मसालों आदि के द्वारा भोजन का आकर्षण बढ़ाने के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी ने इस प्रकार अपना मत प्रगट किया है :—

"मैं अभी विक्टोरिया होस्टल देखकर आ रहा हूं। मुझे यह देखकर बहुत ही दुःख हुआ कि वहाँ बहुत सी पाकशालाएँ हैं। वे पाकशालाएँ इसलिए नहीं बनी हैं कि उनमें भिन्न भिन्न जातियों के लोग भोजन करें, बल्कि उनके बनने की आवश्यकता इसलिए हुई है कि जिन जिन देशों या प्रान्तों से लोग आते हैं वहाँ उन्हें बिलकुल वैसे और उतने ही मसाले मिलें। स्वयं ब्राह्मणों के लिए वहाँ कई विभाग और कई पाकशालाएँ हैं जिनमें भिन्न भिन्न वर्गों के लिए रुचिकर पदार्थ बनते हैं। मैं आपको बतलाना चाहता हूं कि यह रसना का स्वामी होना नहीं है, बल्कि उसका दास होना है। हमारे शरीर के स्वास्थ्य की उचित रचा के लिए जिन खाद्य पदार्थों की आवश्यकता है, जब तक हम केवल उन्हीं से सन्तुष्ट न हों और जब तक कि हम उन मसालों से अपना पीछा छुड़ाने के लिए तैयार न हों जो खाद्य पदार्थों में बल, गरमी, या उत्तेजना आदि उत्पन्न करने के लिए डाले जाते हैं तब तक हम उस बहुत अधिक और अनावश्यक उत्तेजक शक्ति पर अधिकार नहीं रख सकते जो हममें हो सकती है। खाने, पीने और वृत्तियों को संतुष्ट करने में हम पशुओं ही के समान हैं, लेकिन क्या आपने कभी किसी घोड़े या गौ में उतना अधिक चटोरापन देखा है जितना अधिक चटोरापन हम लोगों में होता है? क्या आप समझते हैं कि अपने खाद्य पदार्थों की संख्या को उस सीमा तक

पहुँचा देना कि जहाँ हमें स्वयं अपनी दशा का भी ज्ञान न रहे, वास्तविक जीवन और सभ्यता चिन्ह है ?"

गाँधी जी का उक्त मत ही जीभ की विलासिता से सम्बन्ध रखनेवाले मसालों के उपयोग को व्यर्थ प्रमाणित कर देने के लिए काफ़ी है, किन्तु हम पाठकों के सन्तोष के लिए इन पर कुछ विचार करना भी आवश्यक समझते हैं। किन्तु पहले नमक पर विचार कर लेना चाहिए और समझ लेना चाहिए कि उसके उपयोग की कितनी मर्य्यादा है।

हमारे भोजन की सहायक सामग्रियों में नमक का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। लोगों का ख़याल है कि नमक के बिना काम ही नहीं चल सकता। नमक खाने के पक्ष में जो दलीलें पेश की जाती हैं वे निम्नलिखित हैं :—

१—नमक मनुष्य का स्वाभाविक आहार है, और उसका प्रचलन विश्व भर में है।

२—नमक जीवन के लिए अनिवार्यतः आवश्यक वस्तु है। उसके अभाव में मनुष्य अपने जीवन की रक्षा नहीं कर सकता।

३—जंगली और पालतू पशु भी इसके शौक़ीन होते हैं।

४—शरीर के ठोस और द्रव पदार्थों का एक निर्मायक तत्व नमक भी है।

५—नमक शरीर के क्षय में रुकावट डालता है और इस प्रकार जीवन को सुदीर्घ बना सकता है।

६—राल और पित्त का प्रवाह जारी रखने के लिए नमक बहुत आवश्यक है।

७—नमक का सेवन कराने से पशुओं का वज़न बढ़ जाता है।

८—भोजन को अधिक रुचिकर बना कर यह भूख को बढ़ा देता है।

नमक के व्यापक प्रचार की बात यथार्थ नहीं है। केवल एक व्यक्ति भी यदि नमक खाये बिना स्वस्थ और पुष्ट बना रहे तो भी नमक के अनिवार्य्य उपयोग का सिद्धान्त खंडित हो जाता है, किन्तु हमारे पास इससे भी सबल प्रमाण हैं और यह सिद्ध किया जा सकता है कि पूरी की पूरी जातियाँ नमक के बिना अपना जीवन सुरक्षित बनाये हुए हैं। अलजीरिया के निवासी तथा कोलम्बिया नदी के तट पर बसने वाली हिन्दुस्तानी जातियाँ ऐसी ही हैं। प्रशान्त महासागर के बीच में स्थित द्वीपों के निवासी, अंगरेज़ों से परिचित होने के पहले तक, नमक का व्यवहार नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त न जाने कितने शिकारियों और आविष्कारकों आदि ने, समय पड़ जाने पर, नमक के अभाव में भी काफ़ी समय तक अपनी जीवन-रक्षा, तथा स्वास्थ्य-रक्षा में भी, सफलता पायी है। संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जिन्होंने बीस बीस वर्षों तक नमक का सेवन नहीं किया और फिर भी यही नहीं कि उन्हें कोई हानि नहीं हुई बल्कि उनका स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा बना रहा; उनकी कार्य्यकारिणी शक्ति और स्फूर्त्ति में किसी तरह की कमी नहीं आयी। यदि आप नवजात शिशुओं की प्रवृत्ति को ध्यान से देखेंगे तो उसे उनके पक्ष में नहीं पाएंगे। इससे प्रगट होता है कि नमक का व्यवहार अस्वाभाविक है।

नमक के पक्ष में कही जाने वाली पहली और दूसरी बात के सम्बन्ध में इतना कथन पर्य्याप्त समझा जाना चाहिए। तीसरी बात के महत्त्व पर विचार करते समय

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पालतू पशु मनुष्यों की इच्छा से अधिकांश में प्रभावित होते हैं। रहे जंगली पशु, सो नमक के प्रति उनके अनुराग की प्रचलित की हुई कथा में कल्पना अधिक और वास्तविक तथ्य कम जान पड़ता है। नमक के समर्थकों का कहना है कि शिकारी लोग जान बूझ कर ऐसी जगहों पर अपनी घात लगाते हैं जहां खारे पानी के सोते हैं, और वहाँ नमक ही से आकर्षित होकर हरिण और भैंसें पहुँचती हैं। यह अनुमान अत्युक्तिपूर्ण है। क्या यह नहीं हो सकता कि हरिणी और भैंसों को गर्भावस्था में किस प्रकार की वनस्पतियों की आवश्यकता होती है उसी की खोज में वे वहाँ पहुँच जाती हैं ?

जंगली और पालतू पशुओं से अलग होकर जब छोटे जीवधारियों को देखते हैं तो चिड़ियों को उसके प्रति विरक्त पाते हैं; मुर्गियों और पालतू चिड़ियों के लिए तो वह घातक है। इसके अतिरिक्त शूकर, जो एक पुष्ट पशु है, नमक के सेवन से रोगग्रस्त हो जाता है और ऐसा कि फिर शायद उसका बचना कठिन ही हो। इस प्रकार यह मत तो पूर्णांश में मान्य नहीं हो सकता कि नमक समस्त जीवधारियों के लिए हितकर है। वास्तव में वह प्रकृत नहीं, एक कृत्रिम आवश्यकता है।

मनुष्य मात्र द्वारा नमक के अनिवार्य्यतः आवश्यक उपयोग के सिद्धान्त का समर्थन करने के लिये कुछ लोगों का यह कहना है कि मृत शरीर की जांच करने पर उसमें नमक का एक हिस्सा पाया जाता है, इसलिये यह स्पष्ट है कि नमक मनुष्य का आवश्यक आहार है ! इस विचित्र निष्कर्ष को तो जरा देखिये ! शरीर में, जाँच करने पर अफीम और विषैला द्रव्य भी मिलता है, किन्तु क्या इससे यह प्रमाणित

किया जा सकता है अफ़ीम और विषैला द्रव्य भी मनुष्य का आवश्यक आहार है।

कहा जाता है कि नमक के सेवन से वज़न बढ़ जाता है। किन्तु वज़न किस प्रकार बढ़ता है, यह भी जान लेना चाहिये। किसी मृत शरीर अथवा मांस पर जब कभी नमक का प्रयोग किया जाता है तब उसका प्रत्यक्ष प्रभाव यही होता है कि उस माँस के कणों में से नमी निकलती है; वे सूखे, कड़े और क्षार-युक्त हो जाते हैं। जो प्रभाव मृत शरीर पर होता है, क्या जीवित शरीर में उससे भिन्न अन्य कोई प्रभाव हो सकेगा? भिन्न होने का कोई कारण तो नहीं समझ में आता। इस प्रभाव का एक परिणाम तत्काल यह होता है कि मांस के जो कण शरीर के बाहर अपना मार्ग चाहते हैं वे अपने आपको अवरुद्ध पाते हैं; सूक्ष्म नलियों के भीतर से वे निकल नहीं सकते। ऐसी अवस्था में वे जहाँ के तहाँ ही जम जाते हैं, और इस प्रकार वज़न बढ़ाने में सहायक होते हैं जिस पदार्थ को बाहर निकल ही जाना चाहिये उसे शरीर के भीतर बने रहने देकर यदि शरीर का वज़न बढ़ाया गया तो इससे लाभ ही क्या?

जो कुछ उपर निवेदन किया गया है उससे यह तो स्पष्ट ही है कि नमक का व्यवहार हमारे लिए अनिवार्य्यतः आवश्यक नहीं है। फिर भी हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि नमक की बिलकुल ही आवश्यकता नहीं है, अथवा वह हमारे किसी काम का नहीं है, वास्तव में हम जिस प्रकार लोहा, पोटाश, गंधक, चूना तथा दूसरे खनिज पदार्थों का सेवन करते हैं वैसे ही हमें नमक का भी उपयोग करना चाहिए। हम नमक का स्वतंत्र उपयोग इच्छानुसार कर सकते हैं, किन्तु जैसे अपने किसी आहार पर सोडियम क्लोराइड,

पोटाश, या गंधक नहीं छिड़कते वैसे ही नमक को भी उसके साथ मिलाकर खाने की आवश्यकता नहीं हैं।

हमारे दैनिक आहार में नमक के बाद दूसरा नम्बर मसालों का है। भोजन में मिला कर हम उसे स्वादिष्ट बनाते । : भोजन अधिक पौष्टिक हो जाता है सो बात नहीं। किन्तु वह रसना को रुचिकर अवश्य ही हो जाता है। अध्यात्मिक चिंतन में रत रहने वाले महर्षियों ने सरल जीवन व्यतीत करने वाले ज्ञान के प्यासे व्यक्तियों को जो मसालों से बचने की व्यवस्था आवश्यक निर्धारित की है, उसका प्रधान कारण यही है कि मसालों से भरे हुए उत्तेजक आहार को ग्रहण करने के बाद मनुष्य की बुद्धि अपनी सहज कार्य्य-शक्ति को खो देती है। भारतवर्ष के ज्ञान-विशारदों ही ने मसालों का निषेध किया हो यह बात नहीं। पश्चिमी विचारकों ने भी इसके विरोध ही में अपनी आवाज़ उठाई है। विद्वान् सिलवेस्टर ग्रैहम का इस सम्बन्ध में कहना है:=

"सच बात यह है कि यदि मनुष्य निरंतर उत्तेजक आहार ग्रहण करता जायगा तो उसके इस कार्य्य से उसकी प्रकृति को क्षति पहुँचे बिना नहीं रहेगी।"

ग्रैहम महोदय के उक्त मत का समर्थन पीरीरा महाशय ने भी किया है। उसका कथन है:—

"हर एक व्यक्ति में चटपटी ज़ायकेदार वस्तुओं के प्रति अनुराग से यह भ्रम हो सकता है कि वे हमारी रसना को तृप्त करने के अतिरिक्त कोई उपयोगी सेवा भी कर सकती हैं। वर्त्तमान समय में तो हमारे सामने उनकी उपयोगिता का कोई प्रमाण नहीं है। वे हमारी इन्द्रियों को उत्तेजना भले ही पहुँचावें किन्तु हमारा पोषण नहीं करतीं। उनमें कपूरकी

तरह शीघ्रता से उड़ने वाला जो तेल रहता है वह आत्मसात् कर लिये जाने के बाद कोष्ठ में से बहिष्कृत कर दिया जाता है और तब भी उसकी स्वाभाविक गंधि उसमें विद्यमान पायी जाती है।

डाक्टर बोमेट ने इस विषय में यही सम्मति दी है :—

"भोजन की अनेक सहायक सामग्रियाँ, विशेष कर मसाले किसी शरीर की स्वस्थ अवस्था में उसके पाचन-कार्य्य में कोई सहयोग नहीं करते। उनसे किसी प्रकार का पोषण नहीं प्राप्त होता। वे अत्यन्त दुर्बल उदर की क्रिया में भले ही थोड़ी सहायता कर सकें, किन्तु उनका अनवरत प्रयोग उनकी अप्रत्यक्ष निष्क्रयता का एक सबल कारण हो जाता है। उनका प्रभाव प्रायः वैसा ही होता है जैसा मदिरा या अन्य उत्तेजक पदार्थों का होता है। उनसे जो कुछ आराम थोड़ी देर के लिए मिलता है उसके बदले में भविष्य में बहुत से कष्ट सहने पड़ते है।"

मसालों में मिर्च को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। लेकिन इसे विष से कम न समझना चाहिये। एक चम्मच भर पिसी मिर्च पीकर देख लीजिये, परिणाम यह होगा कि पेट और अंतड़ियों में उससे बहुत अधिक उत्तेजना बढ़ेगी और जब रक्त-प्रवाह से उसका सम्बन्ध होगा तब हृदय की क्रिया में भी व्यघात पड़ेगा। लाल और काली मिर्च के सेवन से रक्त-कौष्ठक बड़े हो जाते हैं, जिससे आगे चलकर हृदय का रोग हो जाता है।

आदी, जायफल, दालचीनी आदि मसालों में थोड़ा-बहुत भेद भले ही हो, किन्तु इन सब का एक मात्र प्रभाव उत्तेजना पहुँचना ही है। अतएव किसी भी स्वास्थ्यकर अहार-पद्धति में इन्हें आदरपूर्ण स्थान नहीं मिल सकता।

नमक और मसालों का व्यवहार दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है। इससे यह भले ही कहा जा सके कि हमारा पाक-विज्ञान उन्नत हो रहा है, किन्तु यदि हमारी बढ़ती हुई अस्वस्थता और उदर-विकारों के मूल कारणों का पता लगाने की कोशिश की जायगी तो अधिकांश में हमारा यह शौक़ ही उत्तरदायी पाया जायगा। महात्मा गांधी के मत को ग्रहण करते हुए हमें चाहिए कि हम अपनी रसना के स्वामी बनें, न कि गुलाम। चटपटी चीजों के प्रति आकर्षित होकर हम उन्हें आवश्यक अहार का अंग समझना छोड़ दें, उन्हें पोषणप्रद मानने की ग़लती न करें। हमारे इस विचार में यदि क्रान्ति हो गयी, यदि शारीरिक मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य को अपना सर्व-प्रधान लक्ष्य बनाकर हमने अपने आप में उन रूढ़ियों को तोड़ने का साहस उत्पन्न किया— जिनके अस्तित्व का अब इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं रह गया है कि वे बहुत अधिक समय से चली आरही हैं तो निस्सन्देह फलों की उपयोगिता और उत्तम आहार के क्षेत्र में फलों के उच्च स्थान को स्वीकार करने की ओर हम अवश्य ही प्रवृत्त होंगे।

दूसरा अध्याय

फल और भारत वर्ष

यह संसार बहुत बड़ा है, इतना बड़ा कि उसे अनन्त कहना ही उचित होगा। वास्तव में उसका कहीं अन्त नहीं है—उसका कहीं ओर-छोर नहीं है। इस अनन्त संसार का भारत वर्ष एक खण्ड मात्र है। भारतवर्ष की भाँति अनेक देशों और प्रदेशों से मिलकर संसार बना है।

सम्राट्, एक विस्तृत साम्राज्य का स्वामी होता है। वह समस्त साम्राज्य तथा उनके अन्तर्गत समस्त भाग और उप-भाग, उस सम्राट के रहने के लिए होते हैं किन्तु वह सभी स्थानों में रहते हुए भी अपने रहने का एक ही स्थान रखता है। साम्राज्य में वह स्थान जिस नाम से प्रसिद्ध होता है, उस नाम को स्कूल के विद्यार्थी और अध्यापक राजधानी के नाम से पुकारते हैं। वह राजधानी, सम्राट के रहने के लिये स्थायी रूप से स्थान होता है। साम्राज्य में जो स्थान अथवा नगर, राजधानी होने का गौरव प्राप्त करता है, वह स्थान अथवा नगर, समस्त साम्राज्य की अपेक्षा कुछ विशेषता रखता है। समूचे साम्राज्य में, उसकी मान-मर्यादा, उसका गौरव-बड़प्पन कुछ और ही होता है। इस विस्तृत संसार में बहुत से साम्राज्य हैं और उनके भिन्न-भिन्न सम्राट हैं। सभी सम्राटों के रहने के लिए, उनके साम्राज्य में राजधानी होती हैं।

इस पृथ्वी पर अनेक साम्राज्म और उनमें अनेक सम्राट हैं। किन्तु समस्त संसार स्वयं एक साम्राज्य है, इस असीम साम्राज्य की एक मात्र अधिकारिणी स्वामिनी प्रकृति है ? इस अनन्त विस्तृत साम्राज्य में सर्वत्र उसका अस्तित्व है फिर भी साम्राज्य में कोई एक नगर राजधानी होता है। भारतवर्ष ही उसकी राजधानी है ? आदि काल से लेकर, इस राजधानी में ही प्रकृति का निवास-स्थान रहा है ? संसार का जो स्थान सदा से प्रकृति का निवास स्थान रहा हो उस स्थान के प्रकृतिक जीवन और नैसर्गिक रहस्यों के लिये क्या कहा जा सकता है और किस प्रकार उनकी प्रशंसा की जा सकती है ?

फलों का विवरण लिखने के समय, भारतवर्ष के प्रकृति जीवन का स्मरण होता है। जिस जीवन में भारतवर्ष के कोटि-कोटि लोग आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते थे, जिस जीवन में इस प्रदेश के प्रायः समस्त स्त्री-पुरुष सात्विक जीवन का सुखोपयोग करते थे और जिस जीवन में भारत के ऋषि और मुनि रहकर अमर पद प्राप्त करते थे, वह जीवन प्रकृति जीवन था, वह जीवन सात्विक जीवन था ! इस जीवन में फलों का आदर था, इस जीवन में फलों का ही महत्व था। फलों का जीवन ही, उन सब के जीवन का एक आधार था। इसीलिए भारतवर्ष में फलों का अधिकार था। यहाँ पर भांति-भांति के फल और एक-एक फल की सैकड़ों क़िस्में होती थीं। भारत-वर्ष के ये दिन, वे दिन नहीं हैं। अब तो समय ही और है, इस का युग ही और है। जिस देश का फल ही प्राण था, आज उसी देश को फलों के गुण बताने की आवश्यकता है।

इस युग में भी फलों के लिए, भारतवर्ष संसार में प्रसिद्ध है। यहाँ के-से फल और इतने अधिक फल, संसार के किसी

अन्य देश में न मिलेंगे। इसीलिए तो भारतबर्ष प्रकृति के कोष के नाम से प्रसिद्ध है! हमारे देश में आज भी इतने अधिक फल होते हैं और वे इतने सुन्दर होते हैं जो मनुष्य जीवन के लिए सुधा के समान हैं। एक-एक फल का गुण तथा उसका रंग-रूप मोहित करने का गुण रखता है!

आम

आम का फल बड़ा उपयोगी और सर्वप्रिय होता है। यह संसार के गर्म देशों में अधिक पैदा होता है। भारतवर्ष तो आम की पैदावार के लिए प्रसिद्ध ही है। यहाँ पर, प्रायः सर्वत्र यह पैदा होता है। इस में सब से बड़ी विशेषता यह है कि वर्ष की प्रत्येक ऋतु में यह किसी न किसी रूप और परिमाण में प्राप्त हो सकता है।

छोटे से लेकर बड़ों तक, ग़रीब से लेकर अमीर तक, सभी को आम बहुत प्यारा है और सभी लोग, इसको बड़ी रुचि तथा स्वाद के साथ खाते हैं। यह वर्ष में एक बार फलता है और बसन्त ऋतु के पश्चात् इसका फलना आरम्भ हो जाता है। गर्मी के दिनों में वह बढ़ता है किन्तु उन दिनों में प्रायः कच्चा रहा करता है। वर्षा काल के आते-आते, आम पकने लगते हैं। बरसात के दिनों में आमों की बहार होती है। शहरों से लेकर देहातों तक आमों की फसल में सब के दिन बड़े सुख से कटते हैं। देहातों में तो उन दिनों में सर्वसाधारण का आम ही आहार होजाता है।

भारत में प्रान्तों के अनुसार आमों के विभिन्न नाम हैं। हिन्दी-भाषा-भाषी, उसको आम कहते हैं, और भारत-भर में वह आम के ही नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इसकी अनेक

जातियाँ होती हैं। उनमें दो प्रधान हैं, कलमी और देशी। कलमी आम का पेड़ छोटा होता है लेकिन उसका आम बहुत बड़ा-बड़ा होता है। देशी आम का पेड़ बहुत बड़ा होता है परन्तु उसके आम छोटे-छोटे होते हैं।

आम जब फलने लगता है और उसका कच्चा फल बहुत छोटा होता है, उस समय से लेकर उसके पकने की आखिरी अवस्था तक आम के सैकड़ों प्रयोग होते हैं। उसके कच्चे फल को लोग अमिया कहते हैं। जब अमिया छोटी-छोटी होती है, उसी समय उसमें खटाई आ जाती है, इसलिए लोग उसको दाल में डालते हैं और चटनी बनाते हैं। कच्चे आमों को काटकर लोग सुखा लेते हैं और उसका अमचूर बनाते हैं, यह अमचूर साल-भर बराबर खटाई का काम देता है। यह सूखा अमचूर जब तक नये वर्ष का, नया आम नहीं आता, सभी लोग दाल और तरकारी में डालते हैं, और उसके द्वारा तरह-तरह की खटाइयाँ बनाई जाती हैं। इसकी खटाई दूसरी खटाइयों से अच्छी और स्वादिष्ट होती है। नमक और मिर्च मिलाकर कच्चे आमों का अमचूर बनाया जाता है। वह खाने में बड़ा अच्छा होता है। आम की गुठली सख्त हो जाने पर लोग उसको निकाल कर और सुखाकर रख छोड़ते हैं। पुरानी हो जाने पर उस गुठली को लोग फोड़कर, बड़े चाव से खाते हैं। सोंधेपन के कारण वह खाने में बड़ी अच्छी लगती है। कुछ लोग इस गुठली को उबालकर खाते हैं। भारत के कुछ हिस्सों में तो यह गुठली इतनी अधिक खाई जाती है कि उसके द्वारा उनका कुछ दिनों तक निर्वाह होता है। फ़सल में वे लोग ये गुठलियां बहुत-सा इकट्ठा कर लेते है और फिर उनकी गुठलियाँ निकालकर तथा उसका आटा बनाकर उसकी मोटी-मोटी रोटी तैयार करते हैं और बड़ी ख़ुशी के साथ खाते हैं।

इसके द्वारा लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यापार भी करते हैं। ग़रीब लोग कच्चे आमों को काटकर बहुत सा अमचूर बनाते हैं और अपनी आवश्यकता के लिये निकालकर बेच लेते हैं। आम पक जाने पर इतना अधिक पेड़ों से गिरने लगता है कि लोग उसको खा नहीं सकते। इसलिये बहुत से लोग उसको कूटकर और रस निकालकर पूड़ियों की तरह उसको सुखा डालते हैं जो अमरस कहलाता है। गरीब तथा निर्धन व्यक्ति इतना अधिक तैयार करते हैं जिसको वे अपने खाने के अतिरिक्त बेचने के काम में लाते हैं और कुछ रुपये प्राप्त कर लेते हैं। इस अमरस को लोग अनेक प्रकार से खाते हैं यह खाने में बड़ा स्वादिष्ट और रूचिकर होता है। आम एक वर्ष कम और एक वर्ष अधिक फलता है। जिस वर्ष इसके अधिक फलने की बारी होती है, उस वर्ष लोग उससे बहुत कुछ आशा करते हैं और उसकी फ़सल के दिनों में तो लोग तरह-तरह के अन्न-कष्ट की बात ही भूल जाते हैं। आमों के अनेक प्रकार से अचार और मुरब्बे बनाये जाते हैं।

गुण—

कच्ची अमिया—कषैली और खट्टी होती है किन्तु खाने में रुचिकारक तथा बात और पित्त को बढ़ाने वाली होती है। कुछ और बढ़ जाने पर किन्तु कच्ची अवस्था में ही उसकी खटाई अधिक हो जाती है, वह रूखी हो जाती है और रुधिर के विकारों को उत्पन्न करती है।

कच्ची अमिया—गर्म, खट्टी और कषैली होती है, किन्तु किसी क्षार के साथ होने से रुचिकारक, मल को रोकनेवाली बात पित्त और कफ़ बढ़ाने वाली होती है किन्तु उससे

कण्ठ के रोग, फोड़े, फुन्सी, अतिसार और प्रमेह को लाभ होता है।

अमचूर—खाने में खट्टा और स्वादिष्ट होता है, वह कषैला होने के साथ-साथ कफ़ और बात के दूर करने के लिये बड़ा लाभकारी होता है।

पका हुआ आम—खाने में सुगन्धित और मधुर होता है, उसका रस स्निग्ध होता है, खाने में अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होता है और शरीर को पुष्ट करता है। बात का नाश करता है और हृदय को बलवान करता है। यह भारी होता है और मल को रोकता है। शीतल होने के साथ-साथ प्रमेह के रोगी को विशेष कर लाभ पहुँचाता है। शरीर को कान्ति देता है, इससे व्रण, श्लेष्म तथा रुधिर के रोगों को लाभ होता है।

पका हुआ आम—खाने में मीठा, वीर्य को बढ़ाने वाला स्निग्ध तथा बलवर्द्धक होता है। इसके खाने से सुख मिलता है, बात का नाश होता है, हृदय को शक्ति मिलती है, शरीर का रङ्ग गोरा होता है, अग्नि और कफ़ बढ़ता है। इसके खाने से शरीर में माँस और बल बढ़ता है और शरीर का परिश्रम दूर होता है।

जो आम वृक्ष पर पकता है, वह खाने में भारी होता है, बात का नाश करता है, किञ्चित खटाई के साथ-साथ मीठा होता है, इसके खाने से पित्त बढ़ता है।

पाल में पकाया हुआ आम—पित्त का नाश करता है, इस में खटाई का अंश नहीं रहता और खाने में अत्यन्त मीठा मालूम होता है। पका हुआ आम बासी हो जाने पर खानेमें बड़ा स्वादिष्ट और मीठा होता है, बल को बढ़ाता है, वीर्य को पैदा करता है, खाने में हलका तथा शीतल होता है, बहुत शीघ्र

पचता है, बात-पित्त का नाश करता है, किसी-किसी को दस्त लाता है।

आम का निचोड़ा रस—बल बढ़ाता है, खाने में भारी होता है, बात का नाश करता है और कुछ दस्तावर होता है, हृदय को हानिकारक होता है, खाने में तृप्ति करता है, किन्तु कफ़ को बढ़ाता है।

आम का निचोड़ा हुआ रस—यदि दूध के साथ खाया जाता है, तो वह अत्यन्त स्वादिष्ट हो जाता है, और अत्यधिक वीर्य पैदा करता है, एवम् शरीर को सौन्दर्य तथा कान्ति प्रदान करता है।

चूसकर खाया हुआ आम—जो आम चूसकर खाया जाता है, उससे शरीर में बल वीर्य बढ़ाता है और खाने में रुचि उत्पन्न होती है। यह हलका और शीतल होता है और खाने में शीघ्र पचता है। यह बात-पित्त का नाश करता है और मल को रोकता है।

काटकर खाया हुआ आम—जो आम काट कर खाये जाते हैं, वे चूसकर खाये जाने वालों की अपेक्षा कुछ जड़ होते हैं, लेकिन खाने में मीठे तथा शीतल होते हैं। वे रुचिकारक और शीघ्र पचने वाले होते हैं, ये धातु और बल को बढ़ाते और बात-पित्त का नाश करते हैं।

धूप में सुखाया हुआ आम का रस—आमों को निचोड़ कर अथवा कूट कर जो रस निकाल लिया जाता है और उस को धूप में सुखा दिया जाता है, वह अमरस या आम्वट कहलाता है। इसके खाने से तृषा शान्त होती है, कै को लाभ होता है और बात-पित्त को फ़ायदा पहुँचाता है। यह खाने में बड़ा रुचिकर किन्तु कुछ दस्तावर होता है। सूर्य की धूप में सुखाये जाने के कारण वह हलका हो जाता है।

आम की गुठली—किञ्चित खटी कषैली और सोंधी होती है बमन, अतिसार और हृदय की दाह में फ़ायदा करती है।

उपयोग—

आमों को अधिक खाने से मन्दाग्नि होती है, विषमज्वर आने का डर रहता है, रुधिर के विकार उत्पन्न हो सकते हैं। और नेत्र-रोग उत्पन्न होता है। किन्तु आम के ये दोष, खट्टे आम के खाने से ही होते हैं। मीठा आम कभी हानि नहीं करता। विशेषकर मीठा आम नेत्रों को हितकारी और अधिक गुण देने वाला है। अधिक आम खाने के बाद सोंठ या ज़ीरे का जल पी लेने से कोई हानि नहीं होती।

मधु के साथ आम—आम को मधु के साथ खाने से राज-यक्ष्मा, प्लीहा, बात और श्लेष्मा का नाश होता है।

घृतके साथ आम—आम के साथ घृत खाने से बात-पित्त का नाश होता है, अग्नि बढ़ती है, बल की अधिक वृद्धि होती है और शरीर की कान्ति तेज़ होती है।

दूध के साथ आम—दूध के साथ आम को खाने से बात-पित्त का नाश होता है, रुचि बढ़ती है और बल तथा वीर्य की वृद्धि होती है।

बादाम

बादाम के पेड़, एशिया, ईरान, मक्का, मदीना, मस्तकत, शीराज आदि स्थानों में बहुत पाये जाते हैं। भारतवर्ष में, काश्मीर, अफ़गानिस्तान और बिलोचिस्तान आदि प्रान्तों के नगरों में भी बादाम के वृक्ष होते हैं। इसके वृक्ष, नीम के पेड़ की भांति बड़े होते हैं। बादाम की दो जातियाँ होती हैं, कड़वी और मीठो। कड़ुआ बादाम हानिकारक होता है, इसलिए उस

का उपयोग नहीं किया जाता। मीठा बादाम, कई प्रकार से खाने के काम में आता है। वह गर्म और अत्यन्त पुष्टिकारक होता है। जो लोग उसका सेवन करते हैं, वे उसकी बहुत थोड़ी संख्या से उसका खाना प्रारम्भ करते हैं और उत्तरोत्तर उसकी संख्या बढ़ाते जाते हैं। ऐसा न करके यदि वह अधिक खा लिया जाय तो उसका हज़म हो सकना कठिन हो जाय।

जो लोग भङ्ग अथवा ठण्ढाई पीते हैं, वे उसमें बादाम अवश्य डालते हैं॥कुछ लोग बादाम को भिगोकर और फिर ठण्ढाई की भाँति पीस कर नित्य नियामानुसार उसका सेवन करते हैं। इस प्रकार का सेवन प्रायः व्यायामशील व्यक्ति या जो पहलवानी करते हैं, वे अवश्य करते हैं। इसके सेवन से शरीर में रक्त बढ़ता है बल की वृद्धि होती है और शरीर में चैतन्य जागृत होता है। कुछ विद्वानों ने बादाम को दूध के स्थान पर सेवन करने की सम्मति दी है। इसी प्रकार की सम्मति देते हुए महात्मा गांधी ने भी लिखा है कि आज कल शहरों में दूध अच्छा नहीं मिलता। एक तो मिलता नहीं और जो मिलता भी है, वह ख़ालिस नहीं होता। बल्कि यह भी देखा जाता है कि बाज़ारू दूध लाभ के स्थान पर हानिकारक होता है, ऐसी अवस्था में यदि दूध के बजाय बादाम का प्रयोग किया जाय तो अधिक लाभ होगा।

गुण—

बादाम—सारक और गर्म होता है। इसकी प्रकृति भारी और अम्लप्रद होती है। खाने में स्वादिष्ट स्निग्ध और कफ़ को बढ़ाने वाला होता है। कषेला होने के साथ-साथ बात का नाश करता है और वीर्य को पैदा करने वाला है। इसके खाने से शरीर में बल और पुरुषार्थ उत्पन्न होता है।

कच्चा बादाम—सारक और भारी होता है। यह पित्त को पैदा करता है, कफ तथा बात के विकारों का नाश करता है।

पक्का बादाम—खाने में मीठा और वृष्य होता है। यह अत्यन्त पुष्टिकारक और बल बढ़ाने वाला होता है। इसके सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है, कफ की उत्पत्ति होती है। रक्त-पित्त और बात-पित्त का नाश होता है।

सूखा बादाम—खाने में मीठा और धातु का बढ़ाने वाला होता है। यह स्निग्ध और वृष्य होता है। इसके खाने से शरीर में बल बढ़ता है बदन पुष्ट होता है. यह कफ को उत्पन्न करता है और बात-पित्त को दूर करता है। शक्ति और पुरुषार्थ बढ़ाने के लिए बड़ा उपयोगी है।

बादाम का तेल—मस्तक के रोगों को दूर करने के लिए यह बड़ा उपयोगी तेल होता है। बदन में मालिश करने से पित्त का नाश होता है बात को शान्त करता है। हलका होने के साथ-साथ जलन को भी शान्त करता है। इसकी प्रकृति शीतल होती है और शरीर में मलने से सौन्दर्य बढ़ता है। इसमें बाजीकरण का गुण भी होता है।

औषधि के रूप में भी बादाम बहुत काम आता है। आयुर्वेद शास्त्र में तो उसके अनेकानेक उपयोग हैं, साधारणतया उसका निम्नलिखित उपयोग करते हैं—

भिलावें से पैदा हुए छालों पर—बादाम की मींगी को घिस कर लगाने से तुरन्त आराम पहुँचता है। जलन को बड़ी जल्दी शान्त कर देता है।

खनखजूरे के काँटे चुभ जाने पर—यह अवस्था बड़ी भयंकर होती है, ऐसे समय पर बादाम का तेल लगाना चाहिए, इससे लाभ होता है।

दांतों को पुष्ट करने के लिए—दांतों की शक्ति को उत्पन्न करने के लिए बादाम के छिलकों में बड़ी शक्ति होती है। इसलिए इसके मोटे और सख्त छिलके को जलाकर और उसकी राख में नमक मिलाकर, खूब महीन-महीन पीसकर रख लेना चाहिए और नित्य उसी से दातों को मलना चाहिए।

मस्तक के रोगों पर—सिर में किसी प्रकार पीड़ा हो अथवा मस्तक का कोई भी रोग हो, बादाम और केसर को गाय के घी में मिलाकर नास लेने से तुरन्त लाभ होता है। यदि कोई इस प्रकार का रोग बहुत दिन से चल रहा हो तो कई दिनों तक बादाम की खीर खाना चाहिए।'मस्तक-पीड़ा में बादाम और कपूर को दूध में घिसकर लेप करने से भी तुरन्त लाभ होता है।'

धातु की बीमारी में—डेढ़ तोला गाय का घी लेकर उसमें एक तोला गाय का मक्खन या हाल का बनाया हुआ खोवा मिला देना चाहिए और उसमें बादाम, शक्कर, शहद और इलायची मिलाकर प्रति दिन सुबह-शाम बराबर सात दिन तक खाना चाहिए। इससे बड़ा लाभ होता है, और उसके विकारों का नाश होकर धातु की बृद्धि होती है।

उपयोग—

। बादाम कई प्रकार से सेवन किया जाता है, किन्तु प्रायः लोग यह करते हैं कि पहले उसे पानी में भिगो देते हैं, उस पर लगी हुई लाल परत को निकाल कर बहुत बारीक पीस डालते हैं कि छानने पर वह बिलकुल दूध के समान तैयार होता है, बस छान कर और उसमें थोड़ी-सी शक्कर और काली मिर्च मिलाकर पी जाते हैं॥

बादाम सूखा खाने के काम में भी आता है, और उसकी मींगी निकालकर उसका हलुवा बनाया जाता है। हलुआ बनाने का नियम यह है कि पहले बादामों को पानी में भिगो कर और उनके भीग जाने पर उनका छिलका निकाल कर, पीस डाले जाते हैं और गाढ़ा-गाढ़ा पिसा हुआ लेकर घी के साथ भूना जाता है, अन्त में कुछ शक्कर मिलाकर उतार लिया जाता है, बस हलुआ बन जाता है। यह बड़ा शक्ति-बर्द्धक और पुष्टिकारक हाता है।

चावलों की खीर में बादाम छोड़े जाते हैं। अर्थात् जब खीर बनाई जाती है तो बादाम कतरकर उस खीर में छोड़ दिये जाते हैं, इससे खीर बड़ी स्वादिष्ठ और पुष्टिकारक बन जाती है।

बादाम की खीर भी बनाई जाती है, उसके बनाने की रीति यह है कि बादाम को फोड़कर गर्म जल में भिगो देते हैं जिससे उसके ऊपर का लाल छिलका बड़ी जल्दी और आसानी से निकल जाता है। इसके बाद बादामों को पीस डाला जाता है, तत्पश्चात् उसे दूध में पकाना पड़ता है। जब कुछ गाढ़ा होने लगता है तो शक्कर और घी डाल कर उसे उतार लेते हैं। यह खीर खाने में स्वादिष्ट तो होती ही है, पुष्टिकारक और शक्ति-बर्द्धक भी होती है।

बादाम का तेल—इसका तेल निकालने के लिये बादामों को फोड़कर उनको पानी में भिगो देते हैं और उनके ऊपर का पतला-सा छिलका निकाल कर उन्हें पीस डालते हैं। पीसते समय उसमें थोड़ी-सी मिश्री भी मिला देते हैं। पीसने के बाद उसे मल-मलकर दबाने से तेल निकलता है। यह तेल मस्तिष्क को ठंढा करता है, कानों की प्रत्येक बीमारी को फ़ायदा पहुँचाता है।

अमरूद

अमरूद का पेड़ प्रायः सभी देशों में पाया जाता है। परन्तु अन्य देशों को देखते हुए भारतवर्ष में इसकी उत्पत्ति सब से अधिक होती है। अपने देश में इसकी पैदावार लखनऊ और इलाहाबाद में बहुत अधिक होती है। देश-भर में इलाहाबाद का अमरूद मशहूर है और उसके बेचनेवाले इलाहाबादी अमरूद कहकर बेचते हैं।

अमरूद की दो जातियाँ होती हैं। एक लाल और दूसरी सफ़ेद। जो अमरूद बड़े होते हैं, उनका वज़न कभी-कभी आधा सेर से भी अधिक होजाता है। फसल के दिनों में यह बहुत सस्ता बिकता है। इसको ग़रीब और अमीर सभी खाते हैं। ग़रीब आदमी तो अमरूदों की फसल में पेट भर-भरकर इसको खाते हैं।

अमरूद कच्चा से लेकर पक्का तक—दोनों हालतों में खाया जाता है। अमरूद जब से फलने लगता है और कुछ बड़ा हो जाता है उसी समय से लोग उसका खाना आरम्भ कर देते हैं और अन्त तक उसको खाते हैं लेकिन अमरूद पकने के पहले बाज़ारों में नहीं बिकता। इसको बेचने वाले उसी समय बेचने के लिए निकलते हैं जब वह पक जाता है अथवा पकने के लगभग हो जाता है। कच्चा अमरूद लोग उनके बगीचे में जाकर तोड़-तोड़कर खा आते हैं।

पक्के अमरूद की अपेक्षा कच्चा अमरूद सख्त होता है। और पके हुए के बनिस्बत कच्चे अमरूद के खाने का स्वाद भी कुछ भिन्न होता है। लेकिन खाने में वह किसी प्रकार अप्रिय और अरुचिकारक नहीं होता। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, जिनके दाँत होते हैं बड़ी रुचि से खाते हैं। जितने भी फल खाने के

कभी नहीं खा सकते, किन्तु नीबू की खटाई कभी किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाती। बीमार आदमियों के लिए तो यह बड़ी ही उपयोगी वस्तु है। नीबू कई प्रकार का होता है, कागजी नीबू, जम्भीरी नीबू, बिहारी नीबू, कन्ना नीबू, आदि।

गुण

साधारण नीबू—खाने में खट्टा होता है, बात का नाश करता है, अग्नि को उद्दीप्त करता है। खाने में पाचक और हलका होता है, क्रिमि-समूह का नाश करता है। पेट के रोगों का शमन करता है। शरीर के परिश्रम को दूर करता है। कफ और पित्त में लाभकारी है, रुचि को बढ़ाता है। और प्रकृति में तीक्ष्ण होता है।

नीबू—रोचक तथा अग्नि उद्दीपक होता है। पित्त को पैदा करता है। बात-रक्तकारक है। नेत्रों के लिए अहितकारी है, कफ़ को बढ़ाने वाला और खाये हुए भोजन को पचानेवाला है।

नीबू त्रिदोष में लाभकारी है, क्षय तथा बात रोग से पीड़ित मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है। मंदाग्नि तथा कोष्ठबद्धता को दूर करने के लिए तो बड़ी अच्छी औषधि है। विषूचिका के रोग में भी नीबू फ़ायदा करता है।

नीबू गर्म, पाचक और खट्टा होता है, पाचन-शक्ति को बढ़ाता है। नेत्रों को लाभ पहुँचता है। अरुचि को दूर करता है। प्रकृति में कटु, कषैला और हलका होता है। कफ़, बात और वमन को मिटाता है। खांसी में फ़ायदा करता है। कण्ठरोग में लाभ पहुँचाता है। पित्त और शूल को दूर करता है। मल को खारिज करता है। विषूचिका आदि अनेक बीमारियों में बड़ा

लाभ पहुँचाता है। आमबात का नाश करता है। पक्का नीबू सर्वोत्तम होता है।

जम्भीरी नीबू--किञ्चित मीठा किन्तु खट्टा बहुत होता है। पित्त को बढ़ाता है। खाने में भारी और सुगन्धित होता है। अग्नि को तेज करता है। वायु को शुद्ध करता है।

जम्भीरी नीबू–खट्टा और मीठा होता है, बात का नाश करता है, पित्त को पैदा करता है। खाने में पथ्य होता है, प्रकृति में पाचक होता है। बल को बढ़ाता और अग्नि को तेज़ करता है।

पक्का जम्भीरी नीबू–खाने में मीठा होता है, कफ का नाश करता है। रक्त-पित्त को निवारण करता है। खाने वालों के शरीर का सौन्दर्य बढ़ाता है। यह नीबू वीर्य की वृद्धि करता है और रुचि को सुन्दर करता है। इसके द्वारा शरीर की पुष्टि और इच्छा की तृप्ति होती है।

जम्भीरी नीबू–गर्म भारी और अम्लकारक होता है। बात-कफ का नाश कारता है। पीड़ा और खाँसी को दूर करता है।वमन और तृषा को शान्त करता है। मुख की अरुचि को मिटाता है, हृदय की पीड़ा को दूर करता है। मन्दाग्नि और कृमि का नाश करता है। छोटी और बड़ी जम्भीरी नीबू के गुण प्रायः समान होते हैं।

कन्ना नीबू—कफ और बात-रक्त को दूर करता है, मेद-रोगों का नाश करता है और पित्त को बढ़ाता है।

साधारण नीबू–स्वाद में खट्टा और पित्त को पैदा करने वाला होता है। अग्नि को तेज़ करता है। सब प्रकार की पीड़ाओं को शान्त करता है। अरुचि का नाश करके रुचि पैदा करता है। विषूचिका तथा कृमि-रोग को दूर करता है।

बड़ा जम्भीरी नीबू—खट्टा, कषेला और कडुवा होता है। प्रकृति इसको सारक और गर्म होती है। यह पित्त और कफ को नाश करता है, खाने में पाचक होता है। छोटे जम्भीरो नीबू के गुण भी इसी प्रकार होते हैं।

मीठा जम्भीरी नीबू—प्राकृति में शीतल होता है, कफ को बढ़ाता है। मुख को शुद्ध एवम् निर्मल करता है। रुचि को बढ़ाता है। खाने में स्वदिष्ट होता है। इसके साथ-साथ भारो, स्निग्ध और बात-पित्त का नाश करने वाला होता है।

मीठा नीबू—खाने में स्वादिष्ट और भारी होता है। वात-पित्त का नाश करता है। विष रोग को दूर करता है। विष को शान्त करता है। कफ और रुधिर के विकारों में लाभ करता है। शोष, अरुचि और तृषा को मिटाता है। बमन बन्द करता है। शरीर का बल बढ़ाता है और पुष्ट करता है। हिचकी में बड़ा लाभकारक होता है।

चकोतरा नीबू—खाने में स्वादिष्ट और रोचक होता है, प्रकृति में शीतल और भारी होता है। रक्त-पित्त को दूर करता है। क्षय और श्वास तथा खांसी में फ़ायदा करता है। हिचकी और भ्रम को दूर करता है।

उपयोग—

नीबू अनेक प्रकार के रोगों में चिकित्सा का काम करता है और वैद्य लोग उसका अनेक प्रकार से उपयोग करते है। किन्तु उसकी छोटी छोटी बातें, साधारण लोगों के बड़े काम की होती हैं, जिनका दिग्दर्शन नीचे दिया जाता है—

बमन पर— सूखे हुए मीठे नीबू को भूनकर और उसको शहद में मिलाकर देने से बमन बंद हो जाता है।

अरुचि पर प्रायः बीमारी में अथवा साधारण अवस्था में भी मुख का स्वाद बिगड़ जाता है, उस दशा में नीबू का रस चूसने से सुरुचि की उत्पत्ति होती है।

भूख न लगने पर अक्सर बीमारी के पश्चात् भूख रुक जाती है और खाना अच्छा नहीं लगता। ऐसी अवस्था में नीबू को काटकर और उसमें नमक-मिर्च लगाकर, आग में थोड़ा-भून लेना चाहिए और फिर धीरे-धीरे उसी का रस चूसना चाहिये। इससे स्वाद अच्छा होता है, भूख लगती है और भोजन पचता है। पेट की वायु शुद्ध होती है।

नीबू के द्वारा खाने-पीने की अनेक चीजें बनाई जाती हैं। उनमें से दो-चार का यहाँ पर वर्णन कर देना आवश्यक है। जो चीजें उससे बनाई जाती हैं, उनके नाम और तरीके नीचे लिखे जाते हैं

नीबू का अचार—एक-एक नीबू के जुड़े हुए चार-चार फांके करने चाहिए, उसके पश्चात् उनमें गर्म मसाला पिसा हुआ भर देना चाहिये और फिर नीबू का रस ऊपर से डाल कर धूप में सुखाना चाहिए।

दूसरी विधि—एक सेर नीबू छीलकर पानी में धो डालना चाहिए और उनको पोंछकर पीतल के अतिरिक्त बर्त्तन में रखने चाहिये। उनमें तीन छटांक नमक डालकर उसमें रस खूब भर देना चाहिये।

तीसरी विधि—किसी मिट्टी के बर्तन में एक सेर नीबू रखकर पाव-भर पिसा हुआ नमक छोड़ देना चाहिए और रोज उसको हिला देना चाहिए।

मीठे नीबू का अचार—नीबुओं के चार-चार फांके करके, एक सेर नीबू में पाव भर गुड़ और आधपाव नमक डालना चाहिए और नित्य हिलाकर धूप में सुखाना चाहिए।

दूसरी विधि—पचास नीबुओं का रस निकाल कर छान लेना चाहिए। उसमें सवा सेर बूरा और पाव-भर सांभर नमक, आधापाव काली मिर्च, एक छटाक इलायची पीस कर, डाल देना चाहिए और अमृतबान में रख देना चाहिये। एक महीने के पश्चात् ये नीबू खाने के योग्य हो जाते हैं।

नीबू का मुरब्बा—एक सेर नीबुओं को झाबे से रगड़ कर चूने के पानी में डाल देना चाहिये और दो दिनों के पश्चात् निकाल कर धो डालना चाहिए। इसके बाद आग पर चढ़ा कर जोश देना चाहिए। नरम पड़ जाने पर उसको चार सेर बूरे की चासनी में डाल देनी चाहिए।

नीबू के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें लिखी जा सकती हैं, किन्तु अधिक लिखना अनावश्यक जान पड़ता है। नीबुओं का उपयोग चतुर गृहस्थों के घरों में तरह-तरह से होता है। यहाँ पर उनके सम्बन्ध में जो थोड़ी-सी बातों का वर्णन कर दिया गया है उतना ही पर्याप्त है।

नारंगी

नारंगी के पेड़ अधिकतर सभी देशों में पाये जाते हैं। भारतवर्ष में, खान देश, धूलिया और पूना में नारंगी के बाग़ अधिक हैं। मोज़ाबीक द्वीप से जो नारंगी आती है, वह अधिक अच्छी और उपयोगी कही जाती है।

नारंगी का रस और छिलका—दोनों ही बड़े काम के होते हैं। उसका रस खाने के काम में आता है और उसका छिलका,

मुह के मुंहासों आदि को दूर करने के लिये लगोया जाता है।

नारङ्गी का रस इनफलुएंज़ा के रोगियों को विशेष लाभकारी होता है। रोगी चाहे तो अनेक सप्ताहों तक नारङ्गी ही का सेवन करके काम चला ले। नीबू के रस में तो एसिड उत्पन्न करने की भी प्रवृति होती है, किन्तु नारङ्गी में वह दोष भी नहीं पाया जाता।

नारङ्गी दो प्रकार की होती है, मीठी और खट्टी, दोनों के गुणों में अधिक अन्तर नहीं होता। हां कोई अधिक खट्टी होती हैं। उसमें कुछ अन्तर पाया जाता है दोनों प्रकार की नारगियों का गुण इस प्रकार है··

गुण—

मीठी नारङ्गी—इसकी गन्ध मनोहर होतीं है, भारी होने के कारण कुछ कठिनाई में पचती है। उसका स्वाद कुछ खट्टापन लिये मीठा होता है। नारङ्गी का गुण वीर्य का बढ़ाना और बात का नाश करना हैं।

खट्टी-मीठी नारंगी—यह कफ़ को बढ़ाती है, पित्त को उत्तेजना देती है। खाने पर कठिनाई से पचती है। कुछ दस्तावर भी होती है। स्वाद इसका खट्टा-मिट्ठा मिला हुआ होता है। यह बात को शान्त करती है, इसकी प्रवृति उष्ण और मधुर होती है।

खट्टी नारङ्गी=खट्टी नारङ्गी हृदय के लिये शक्ति वर्द्धक है। शरीर को बल प्रदान करती है। प्रकृति में विशद, भारी और रुचिपूर्ण होती है। यह सारक कुछ उष्ण और सुस्वादु भी होती है। साधारणतया बात, श्रम और पीड़ा का नाश करती है।

उपयोग—

जो नारंगी बहुत खट्टी होती है, वह खटाई का भी काम देती है। लोग नीबू के स्थान पर खट्टी नारंगी का रस दाल में डालते हैं। खट्टी होने के कारण ही कुछ लोग उसकी कढ़ी भी बनाते हैं। उसके द्वारा कढ़ी बनाने की रीति निम्न लिखित है—

नारंगी की कढ़ी—पहले कुछ खट्टी नारंगियों का रस निचोड़ लिया जाता है। उस रस में, आधा छटाक बूरा एक तोला अदरख, दो आना-भर जीरा चार बड़ी इलायची को लेकर महीन पीसकर और छान कर डाल देना चाहिये और पीछे से दालचीनी, हींग का बघार दे देना चाहिये। एक उबाल आ जाने पर उसे उतार लेना चाहिये।

अखरोट

अखरोट के वृक्ष चीन ईरान और हिमालय के आस-पास अधिक होते हैं। इनकी पैदावार उत्तरी भारतवर्ष में अधिक होती है। पैंतीस-चालीस वर्ष के उपरान्त अखरोट के पेड़ में फल लगने आरम्भ होते हैं। इसका फल कच्चा और पक्का—दोनों अवस्थाओं में खाया जाता है। कच्चे फल का लोग नमक के संयोग से अचार बनाते हैं। यह अचार बड़ा सुन्दर और खाने में रुचिकर होता है।

पिछले पृष्ठों में हम अनेक बार बादाम और अखरोट की चर्चा कर चुके हैं और यह बता आये हैं कि इनमें प्रोटीन की मात्रा विशेष होती है। खूब अच्छी तरह चबाकर खाने से ये बहुत पोषक और लाभकारी आहार प्रमाणित हो सकते हैं। यदि एक मात्र इन्हीं का आहार किया जाय तो इन्हें पचाना कठिन नहीं होता। इनकी यह विशेषता उस अवस्था में भी

बनी रहती हैं जब इनका संयोग केवल फलों के साथ होता है। किन्तु यदि ये अन्य किसी आहार के सहायक अंगबना दिये जाते हैं, तब इन से पूरा पूरा लाभ नहीं मिलता। अखरोट में—और इनके साथ बादाम में—सर्वांश में उपयोगी आहार की सभी विशेषताएँ मौजूद हैं—प्रोटीन, चर्बी, कारबोहाइड्रेट और नमक इन सब का जितना अंश आवश्यक है उतना इनमें मिलता है। यदि केवल इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि इसके साथ कुछ फलों का सेवन भी आवश्यक है, तो इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य के लिये ये बहुत उत्तम आहार प्रमाणित होते हैं।

पका हुआ अखरोट खाने के काम में आता है। यह एक मेवा है और सूखा खाया जाता है। इसकी प्रकृति गर्म होती है, इसीलिए लोग जाड़े के दिनों में शुष्क मेवों के साथ अखरोट को मिलाकर खाते हैं। इसके खाने से शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है, कान्ति की वृद्धि होती है। पके हुए अखरोट का तेल निकाला जाता है, यह तेल खाया जाता है, जहाँ पर इसके अधिक वृक्ष होते हैं, वहाँ लोग इसका तेल निकलवाकर जलाने और सिर में डालने के काम में लाते हैं। इसका तेल गर्म शक्ति-बर्द्धक और उपयोगी होता है।

गुण

अखरोट—खाने में मीठा और कोई-कोई किञ्चित खट्टा होता है। इसकी प्रकृति स्निग्ध और शीतल होती है, अखरोट गर्म और रुचिकारक होता है। यह कफ और पित्त को उत्पन्न करता है। खाने में भारी और प्रिय होता है। शरीर में बल उत्पन्न करता है। मल की वृद्धि करता है। बात को शान्त करता है। हृदय के रोगों को दूर करता है। रुधिर के दोषों

को मिटाता है और रक्त को शुद्ध करता है। बात को शान्त करता है।

उपयोग

पेट को साफ़ करने के लिए—अखरोट की छाल का काढ़ा बनाकर पीने से पेट का मल साफ़ होजाता है और पेट हलका हो जाता है।

दूसरी विधि—पेट को साफ़ करने के लिये अखरोट का तेल बड़ा लाभकारी होता है। आवश्यकता पड़ने पर अखरोट का तेल दो-तीन तोला पीने से अत्यधिक लाभ होता है।

अर्श के रोग पर अखरोट के तेल में कपड़ा भिगोकर रखने से अर्श बड़ा को फायदा होता है। लगातार उसका प्रयोग करने से अर्श के रोग का अन्त हो जाता है।

व्याधि, कृमि और गुल्म पर इन रोगों के लिए कच्चे अखरोट का रस बड़ा उपयोगी होता है। इस प्रकार की किसी भी बीमारी में उसका रस पीने से रोग का नाश होता है।

स्त्रियों के स्तनों में दूध पैदा करने के लिए अखरोट के पत्तों को कूट कर और महीन करके सूजी आटे में मिला देना चाहिये और उस मिले हुए की पूड़ियाँ बना कर दूध के साथ कम से कम सात दिनों खिलाने से स्त्रियों में दूध उत्पन्न होता है।

वायु से उठी हुई सूजन पर सर्दी पाकर शरीर में जो कहीं न कहीं सूजन पैदा हो जाती है, उसके लिये अखरोट बड़ा उपयोगी है। जहाँ कहीं शरीर में इस प्रकार का कष्ट हो, वहाँ पर अखरोट को पानी में घिस कर लगाने से सूजन उतर जाती है।

विषाबिल

विषाबिल के पेड़ कोंकण, कर्नाटक और गोवा की ओर अधिक होते हैं। इसके फल नारङ्गी के समान होते हैं और देखने में बड़े सुन्दर मालूम पड़ते हैं।

विषाबिल के बीजों का तेल निकाला जाता है। वह तेल खाने और औषधियों में डालने के काम में आता है। इसका तेल बड़ा उपयोगी और गुणदायक होता है। खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। विषाबिल में खटाई होती है, इसलिए भारत के दक्षिण, गुजरात और कर्नाटक में, जहाँ इसकी उत्पत्ति होती है खटाई के लिये दाल और शाक में डाला जाता है। इससे खटाई आ जाने के कारण ये चीजें बड़ी स्वादिष्ट बन जाती हैं। मोम की जो मोमबत्तियाँ बनाई जाती हैं, वे मोम में इस तेल के मिलाने से ही बनाई जाती हैं।

गुण—

कच्चा बिषाविल—यह खाने में खट्टा और गर्म होता है, बात का नाश करता है। कफ़ को बढ़ाता और पित्त को उत्पन्न करता है। खाने में फीका किन्तु रुचिकारक होता है। अग्नि को उद्दीप्त करता है। बातोदर, बात और अतिसार में फायदा करता है।

पक्का विषाबिल—भारी और मलरोधक होता है। खाने में चरपरा, कषैला और हलका होता है। इसकी प्रकृति खट्टी कुछ उष्ण और रोचक होती है। कफ़ को बढ़ाता है और बात को उत्पन्न करता है। प्यास और बवासीर को शान्त करता है। संग्रहणी, गुल्म और शूलादि रोगों पर लाभ करता है। हृदय के रोगों को मिटाता है, और कृमि को दूर करता है। अग्नि का उद्दीपन करता है, खट्टा और फीका होता है।

उपयोग–

विषाबिला और उसका तेल—दोनों ही बड़े काम के होते हैं। वे शरीर के भिन्न-भिन्न व्याधियों और बीमारियों में काम आते हैं और बड़ा लाभ पहुंचाते हैं। उसके उपयोग की साधारण बातें नीचे दी जाती हैं।

अजीर्ण हो जाने पर—प्रायः अधिक घी खा लेने अथवा अन्य किन्ही कारणों से अजीर्ण हो जाता है तो विषाविल का लोग प्रयोग करते हैं, इसका काढ़ा बनाकर पीने से तुरन्त लाभ होता है।

जलन होने पर—हाथ की हथेली और पैर के तलुओं में जलन होने पर विषाबिल का तेल लगाने से बड़ा लाभ होता है और जलन शान्त हो जाती है। इस प्रकार के कष्टों के लिए विषाबिल का तेल अत्यन्त प्रसिद्ध और उपयोगी होता है।

होठों के फटने पर—सर्दी के दिनों में और तेज हवा के चलने पर प्रायः होठ और मुख फटने लगते हैं। कुछ लोगों को शीतकाल में इससे बड़ा कष्ट होता है। इसके लिए बिषाबिल का तेल बड़ा उपयोगी और तुरन्त फायदा पहुँचाने वाला होता है। इसका तेल लगाने से हाथ-पैर, होंठ और मुख का फटना बन्द हो जाता है। सर्दी के दिनों में जो लोग इस तेल को लगाते रहते हैं, उनको यह कष्ट नहीं होता। यह बदन को चिकना और मुलायम रखता है।

हड्डियों की पीड़ा पर—हड्डियों की पीड़ा बड़ी बुरी होती है। इस पीड़ा में किसी प्रकार चैन नहीं मिलती। इसके लिए बिषाबिल के पत्तों को पीस कर गर्म करना चाहिये और गर्म-गर्म बांधना चाहिये, इससे हड्डियों की पीड़ा बहुत जल्दी अच्छी हो जाती है।

शीत-पित्त पर—विषाबिल के फलों को पाव-भर पानी में डालकर और उसमें ज़ीरा और शक्कर मिलाकर पीने से लाभ होता है।

आलूबुख़ारा

आलूबुख़ारा के पेड़ फ़ारस, ग्रीस और अरब की ओर बहुत अधिक होते हैं। हमारे देश में भी आलूबुख़ारा होता है किन्तु उतना नहीं। ऊपर से देखने पर आलूबुख़ारा मुनक्का की भांति मालूम पड़ता है किन्तु भीतर से पीला होता है। हमारे देश में यह बुखारा की ओर से अधिक आता है, इसीलिए इसका नाम आलूबुख़ारा है।

आलूबुख़ारा बादाम की तरह का ही होता है परन्तु उससे कुछ छोटा होता है। यह खाने में मधुर और रुचिकर होता है और पाचक भी होता है। साधारणतया लोग इसको चटनी आदि बनाने में प्रयोग करते हैं। वैद्य लोग उससे औषधि का भी काम लेते हैं। आलूबुख़ारा उपयोगी और लाभकारक फल है।

गुण—

आलूबुख़ारा—इसको खाने से भोजन पचता है और मल साफ़ हो जाता है। यह कषेला और हृदय के लिए लाभकारक होता है। प्रकृति इसकी भारी और शीतल होती है। यह मल को बाँधता है और दस्तावर होता है। इसकी तासीर गर्म और कफ पित्त को नाश करती है। स्वाद में कुछ खट्टा किन्तु खाने में मधुर, मुख-प्रिय और रुचि को उत्पन्न करने वाला होता है। प्रमेह, गुल्म बवासीर और रक्तवात में आलूबुख़ारा फ़ायदा करता है।

पका हुआ आलूबुखारा—खाने में मधुर और भारी होता है।

यह कफ को उत्पन्न करता है। पित्त को बढ़ाता है। प्रकृति में यह गर्म और रुचिकारक होता है। खाने में बड़ा प्रिय लगता है। यह धातु की वृद्धि करता है। प्रमेह बवासीर को लाभ करता है और ज्वर तथा बात को शान्त करता है।

उपयोग–

मलबद्धता पर—इसकी प्रकृति दस्तावर होती है। इसलिए मल साफ़ न होने पर वैद्य आलूबुखारा को पानी में घिसकर पिलाते हैं। इससे टट्टी साफ़ होती है और पेट हलका हो जाता है।

मुँह के सूखने पर—मुख के सूखने पर आलूबुखारा को मुँह में रख कर उसका रस चूसने से मुँह में सूखापन नहीं रहता।

आलूबुखारे की चटनी—पहले इसको पानी में भिगो देते हैं और भली भांति भीग जाने पर उसको मसल कर पानी में गूदा निकाल लेते हैं तथा उसकी गुठली फेंक देते हैं। उसके बाद नमक, सूखा पुदीना और काली मिर्च को पीस कर उसमें मिला देते हैं।

दूसरी विधि—आलूबुख़ारा, लालमिर्च, ज़ीरा, हींग, धनियाँ और नमक को नीबू के रस में पीसते हैं। ज़ीरा और हींग को भूनकर मिलाते हैं। यह चटनी बड़ी स्वादिष्ट बन जाती है।

आलूबुखारे की चटनी बड़ी उपयोगी और लाभकारक होती है। इसके खाने से मुख का स्वाद अच्छा होता है, रुचि बढ़ती है और खाने के पश्चात् खाना हज़म हो जाता है। इसमें

यह विशेषता है कि यह किसी को हानि नहीं पहुंचाती। यहाँ तक कि बीमारों तथा बीमारी से उठे हुए स्त्री-पुरुषों को भी दी जाती है।

अनन्नास

अनन्नास का रस क़ब्ज़ दूर करने के लिए बड़ी अकसीर चीज़ है। गले की बहुत सी बीमारियों में भी यह बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है। गले की (Diptheria) बीमारी में यह बहुत प्रभावशाली औषधि का काम करता है। रोग-ग्रस्त आंत पर भी इसका अच्छा प्रभाव देखा गया है। साथ ही, स्वस्थ आँत पर भी, यदि इस रस का सेवन परिमित मात्रा में किया जाय तो, इसकी शक्ति बढ़ाने ही की प्रवृत्ति देखी जाती है, इनसे किसी तरह की हानि नहीं पहुँचती। इसके प्रमाण में यह कहा जा सकता है कि यह रस एक बरस से भी कम अवस्था के बच्चों को दिया गया है और किसी तरह की हानि नहीं हुई है।

सेब

फलों में सेब को बादशाह की पदवी मिली है। उनमें पोटाश, सोडा, मैग्नेशिया और फासफोरस प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहते हैं। इस कारण, स्नायु और मस्तिष्क के लिए बहुत हितकारक आहार माना जाता है। यह रोग कीटाणुओं को मारता और शरीर के भीतर निर्मलता का संचार करता है। सेब के सेवन से पेट में एसिड की वृद्धि नहीं होती, वास्तव में उससे वह घटता है। वे साधारण आहार का स्थान

लेने के साथ साथ पौष्टिक विशेषता से सम्पन्न पाये जाते हैं। सेब खाने से क़ब्ज़ दूर होता है। अन्य फलों की अपेक्षा सेब मनुष्य के शरीर की आवश्यकताओं की अधिक मात्रा में पूर्त्ति करता है। सेब की उपयोगिता को देखते हुए यदि हम एक मात्र उसी पर कुछ दिन तक निर्भर रहने का प्रयोग करें तो यह भी विचारणीय बात है। विशेष करके गर्मियों में यह प्रयोग सुविधापूर्वक दिया जा सकता है। सेब का रस भी बहुत लाभकारी वस्तु है।

केला

केला देर में पचनेवाली भारी चीज़ है। इसलिए इसके सेवन में हमें सावधानी करनी चाहिए। लोगों ने इसे 'गरम प्रदेशों की रोटी' की उपाधि दी है। यदि हम अधिक मात्रा में इसका व्यवहार करना चाहें तो अवश्य ही हमको यह बात स्मरण रखनी चाहिए। केला खाते समय यह तो देख ही लेना चाहिए कि वह अच्छी तरह पका है या नहीं। केला के ऊपरी छिलकों को खाने का उद्योग नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह अत्यन्त कठिनता से पचता है। जिन लोगों को केला हितकारक नहीं होता, उन्हें ज्यों ही यह बात मालूम हो जाय त्योंही इसे खाना त्यागकर देना चाहिए। केला का किसी अन्य आहार के साथ मेल नहीं खाता; इसलिए इसे अकेला ही खाना चाहिए।

अंगूर

अंगूर की उपयोगिता का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि अनेक स्थानों में अंगूर के आहार-द्वारा औषधि

करने का उद्योग किया जाता है। ऐसे स्थानों में यह तो अनुभव किया जा चुका है कि अंगूर खाकर अनेक सप्ताहों तक मनुष्य रह सकता है। विशेष करके क्षयरोग तथा इस तरह की अन्य बीमारियों में अंगूर-औषधि को सफलता भी प्राप्त हुई है।

आहार के रूप में मीठे अंगूर बहुत मूल्यवान हैं। उनके भीतर जो जल विद्यमान रहता है उससे अधिक शुद्ध जल कहीं मिल नहीं सकता। उनमें चीनी का अंश भी यथेष्ट रहता है, जिसका मानव आहार में एक भाग रहना अत्यंत आवश्यक है। हमारे अनेक आहारों में स्टार्च मौजूद रहता है, उससे हमें उक्त वांछित चीनी का अंश प्राप्त होता है। लेकिन हमारे शरीर-द्वारा उसके रक्त में ग्रहण किये जाने के योग्य बनने के पहले उसको अनेक अवस्थाओं में पार होना पड़ता है। अंगूर में वद्यमान चीनी के अंश में यह कठिनाई भी नहीं, वह अपने प्रकृत रूप ही में शरीर द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है। ऐसी अवस्था में अंगूर का सेवन तो सर्वथा अनुमोदनीय है।

अंगूर अपने देश में तो पैदा होता ही है, अन्य देशों से बहुत अधिक आता है। विदेशों से जितने भी फल अपने देश में आते हैं, उनमें सब से अधिक अंगूर ही आता है। अपने देश में प्रान्तिकता के अनुसार अंगूर के भिन्न-भिन्न नाम हैं, परन्तु हिन्दी में ही अंगूर के कितने ही नाम लिए जाते हैं, अथवा यों कहा जाय कि उसकी अनेक क़िस्में हैं। किशमिश, मुनक्का, अंगूर, बेदाना आदि उसके कई एक नाम अथवा उसकी क़िस्में हैं।

अंगूर अपने देश में, कश्मीर, पंजाब और बिलोचिस्तान प्रान्त के क्वेटा आदि में बहुत पैदा होता है। अंगूर की पैदावार

ऊँचे स्थानों में ही होते हैं। किन्तु काश्मीर का अंगूर सब से उत्तम होता है।

अंगूर दो प्रकार का होता है, एक तो दानेदार और दूसरा बिना दानेदार। बिना दाने का अंगूर सूखकर किसमिस हो जाता है और दानेदार अंगूर सूखकर दाख हो जाता है। इस प्रकार किसमिस, दाख, मुनक्का और अंगूर में साधारणतया एक ही गुण होता है। अंगूर ताज़ा खाने में बड़ा स्वादिष्ट और रुचि पूर्ण होता है। इसका रस मीठा और लाभकारी होता हैं।

साधारणतया लोगों का विश्वास होता है कि अंगूर खाने से मनुष्य की शक्ति बढ़ती है किन्तु यह विश्वास ग़लत है। अंगूर से शरीर की शक्ति नहीं बढ़ती। वरन् उसके रस से यकृत शुद्ध होता है और उसकी क्रिया के सहायता मिलती है। इसलिए अंगूर के द्वारा क्षुधा वृद्धि होती है अंगूर के खाने से शरीर में रक्त बढ़ता है, रुधिर शुद्ध होकर अपनी गति में स्फूर्त्ति प्राप्त करता है। इसके खाने से किसी को हानि नहीं होती। बालकों से लेकर बूढ़ों तक सभी बड़ी रुचि के साथ अंगूर खाते हैं। इससे स्वास्थ्य की वृद्धि होती है, शरीर का सौन्दर्य बढ़ता है।

अंगूर के द्वारा खाने की अनेक चीज़ें बनाई जाती हैं। इसका मुरब्बा बनता है, जो बड़ा रुचिपूर्ण, शक्ति वर्द्धक होता है, खाने में पाचक होता है। अंगूरों का शरबत बनाया जाता है, यह शरबत शीतल और रक्त बढ़ाने वाला होता है। गर्मी के दिनों में इसके सेवन से बड़ा लाभ होता है। शरीर की जलन शान्त होती है बदन पर प्रत्येक समय स्फूर्ति रहती है। चेहरा हर समय हँसता हुआ दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त अंगूरों शराब से तैयार की जाती है। यह शराब सभी प्रकार की

शराबों में अत्युत्तम होती है। शराबों में अंगूरी शराब का नाम प्रसिद्ध है।

अंगूरों की चटनी भी बनाई जाती है, जो बड़ा ज़ायकेदार और उपयोगी होती है। उसके खाने से अन्य भोज्य पदार्थ भी सुरुचिपूर्ण और स्वादिष्ट जान पड़ते हैं। खाना हज़म होकर फिर शीघ्र ही भूख लगती है।

शरीर पालने में अंगूर से अधिक उपयोगी और कोई फल नहीं होता। जहाँ पर यह पैदा होता है, वहाँ पर मानो मनुष्य के जीवन के लिए सुधा उत्पन्न होती है। यू० पी० में उत्पन्न न होने के कारण अंगूर तेज़ बिकता है फिर भी वह इतना लाभकारक होता है कि पैसे वाले, तथा समर्थ व्यक्ति उसे खरीद कर खाते हैं। बिना मौसिम जो अंगूर मिलता है वह भाव में बहुत तेज़ होता है किन्तु फसल पर अंगूर सब जगह करीब-करीब सस्ता हो जाता है।

गुण--

पका हुआ अंगूर—कुछ दस्तावर होता है, प्रकृति में शीतल और नेत्रों के लिए हितकारी होता है। इससे स्वर शुद्ध होकर तीव्र होता है। इसका स्वाद मीठा, अत्यन्त मनोहर और रुचिकारक होता है। इसके खाने से मल और मूत्र साफ़ होता है। वीर्य की वृद्धि होती है। किञ्चित कफ़ उत्पन्न करता है। शरीर को पुष्ट करता है, रुचि को बढ़ाता है। तृष्णा और ज्वर को शान्त करता है। श्वास-रोग और वात-रोग का नाश करता है। मूत्र कृच्छ्, रक्त-पित्त का दमन करता है। मोह और दाह का शमन करता है और शोष आदि रोगों में बड़ा लाभ पहुँचाता है।

कच्चा अंगूर—भारी और खट्टा होता है। रक्त-पित्त उत्पन्न करता है। कड़ुवा और कुछ उष्ण होता है। साधारणतया रुचिकारक होता है। अग्नि को बढ़ाता है।

अंगूर—खाने में मीठा और कोई-कोई कुछ खट्टापन लिए होता है। तृषा और रक्त-पित्त का नाश करता है। श्रम को मिटाता है। खाने से तृप्ति होती है और शरीर पुष्ट होता है।

अंगूर—धातु को बढ़ाता है। शोष का नाश करता है, प्यास को हरता है। बात को दूर करता है। बमन को शान्त करता है। अंगूर सुरस मधुर और वीर्य प्रद होता है। ज्वर और कफ़ को दूर करता है। मल को शुद्ध करता है।

अंगूर—कुछ स्थानों का अंगूर मीठा और कुछ खट्टा होता है। किसी क्षार के साथ खाने से पित्त, बात और कफ़ का नाश करता है। रक्त से उत्पन्न हुए रोगों को, जलन और शोष को मिटाता है। श्वास और खाँसी को दूर करता है।

अंगूर—प्रकृति में शीतल और हृदय के लिए हितकारी है। अंगूर के खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। आत्मा को शान्ति मिलती है। श्रम और दाह का शमन होता है। श्वास और खांसी के लिए लाभ-प्रद होता है। कफ, पित्त और ज्वर को मिटाता है। हृदय की व्यथा को शान्त करता है।

किसमिस—खाने में मधुर और शीतल होती है। वीर्य की वृद्धि करती है। रुचि को बढ़ाती है किंचित खट्टी होती है। स्वास, खाँसी, ज्वर और हृदय की पीड़ा में फायदा करती है। रक्त-पित्त, स्वर-भेद, तृषा, बात और मुख के कड़ुवेपन को दूर करती है।

उपयोग–

प्यास को रोकने में—बुख़ार में जब प्यास अधिक होती है और पानी पीने से शान्त नहीं होती तो काली मिर्च और नमक के साथ मुनक्का देने से प्यास रुक जाती है।

मल की रुकावट में—जब किसी मरीज़ या निर्बल आदमी को कोष्ठबद्धता की शिकायत होती है, और उसे दस्त नहीं होता, उस अवस्था में उसकी बीमारी और कमज़ोरी के कारण उसको कोई जुलाब नहीं दिया जा सकता। इसलिए मुनक्का खिलाकर ऊपर से दूध पिला दिया जाता है। अथवा दूध में मुनक्कों को कुछ देर तक पकाकर वह दूध पिला दिया जाता है। इससे पेट हलका हो जाता है और दस्त भी साफ़ हो जाता है।

अंगूर का मुरब्बा—धुले हुए अंगूरों को बाँस की बहुत पतली तीलियों से छेद डालते हैं और उसके बाद शक्कर की चाशनी में उन अंगूरों को छोड़ देते हैं। अंगूर का मुरब्बा बनाते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि अंगूर गल न जाँय।

अँगूर की चटनी—इसकी चटनी बड़ी सुन्दर और स्वादिष्ट होती है। इसके बनाने में कोई कठिनाई नहीं होती। अंगूरों को पीसकर उसमें ज़ीरा, काली मिर्च, पुदीना और नमक मिला दिया जाता है।

इमली

इमली भारतवर्ष में तो होती ही है, अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के अन्यान्य देशों में भी बहुतायत से पाई जाती है। इसके वृक्ष बहुत बड़े-बड़े होते हैं और आठ-दस वर्ष के

बाद इसमें फल लगने आरम्भ हो जाते हैं। इमली चैत के महीने में पककर गिरने लगती है। इसके पहले यह कच्ची रहा करती है। फागुन के दिनों में वह कुछ भीतर से पक जाती है और उसका कच्चापन मिट जाता है। उन दिनों में भी यह खाई जाती है। कच्ची इमली बहुत अधिक खट्टी होती है। गद्दर होने पर उसकी खटाई कम हो जाती है।

पकी हुई इमली सूखी खाई जाती है। वह खाने में मीठी होने के साथ-साथ खट्टी भी होती है। कुछ वृक्षों की इमलियाँ पक जाने पर बहुत कम खट्टी मालूम होती हैं लेकिन कुछ पेड़ों की इमली पकने पर भी काफ़ी खट्टी रहती है।

इमली के पेड़ देहात में अधिक होते हैं। गाँव के रहने वाले लोग जब इमली कच्ची होती है तभी से उसका खाना आरम्भ कर देते हैं। खट्टी होने के कारण, दाल, तरकारी आदि में डाली जाती है। गद्दर इमली की खटाई बड़ी स्वादिष्ट और रुचिकारक होती है। इसकी चटनी बड़ी अच्छी बनती है।

पकी हुई इमली खाने में बड़ी ज़ायकेदार होती है। खट्टी होने के करण वह अधिक नहीं खाई जाती। फिर भी किसान और मज़दूर सूखी खाकर कभी-कभी अपनी भूख मिटाते हैं। पकी हुई इमली से खाने की बहुत-सी चीजें बनती हैं। फसल के दिनों में बहुत-सी इमली इकट्ठा करके लोग अपने घरों में रख छोड़ते हैं और उसके भीतर का बीजा जिसको चिया कहते हैं निकाल कर गूदे के बड़े-बड़े लड्डू से बाँध लेते हैं। लड्डू बाँधते समय बारीक पिसा हुआ नमक मिला लेने से इमली में कीड़े नहीं लगते।

पकी हुई इमली का पना बड़ा अच्छा बनाया जाता है। उसका स्वाद बड़ा मनोहर होता है। यह पना रोटी और भात के साथ खाया जाता है। इमली के बीज, चिया खाने के भी काम में आते हैं। ग़रीब लोग उनको सेंककर खाते हैं। इसके सिवा चियों का तेल भी निकाला जाता है। यह तेल कहीं-कहीं पर काम में भी लाया जाता है किन्तु प्रायः लोग उसे बेकार समझते हैं। किन्तु लोगों का यह समझना बहुत अधिक सही नहीं है।

गुण—

कच्ची इमली—बात का नाश करती है। खाने में बहुत अधिक खट्टी होती है। कफ को बढ़ाती है और पित्त को उत्पन्न करती है। कमज़ोर तथा बीमार आदमियों को कच्ची इमली के खाने से खाँसी आने लगती है।

पक्की इमली—खाने में पाचक होती है। मन्दाग्नि को मिटाती है। भूख पैदा करती है। इसकी प्रकृति बहुत गर्म होती है। इसके खाने से कफ और बात शान्त होता है। इसका स्वाद खट्टा मिला हुआ मीठा होता है।

नई इमली—पकने के पहले जो इमली होती है उसमें खटाई बहुत अधिक होती है। नई इमली और कच्ची इमली में अन्तर होता है। नई इमली से मतलब बड़ी इमली से होता है। नवीन इमली बहुत अधिक खट्टी और कषेली होती है। इसके खाने से बात और कफ़ बहुत उत्पन्न होता है।

इमली का क्षार—यह इमली को जलाकर बनाया जाता है। इसका यह गुण है कि मन्दाग्नि को मिटाता है और शूल का नाश करता है। इमली का क्षार बड़ा उपयोगी होता है।

पकी इमली का रस—यह खाने में खट्टा और मीठा होता है। रुचि उत्पन्न करता है। जायकेदार और मधुर होता है। यह व्रण का नाश करता है और शरीर में किसी प्रकार की सूजन तथा शूल में इसके रस का लेप करने से बहुत लाभ होता है।

इमली का सार—यह खाने में जलन पैदा करता है। कफ़ को बढ़ाता है। बात को नाश करता है। बहुत अधिक खट्टा होता है। यदि उसके सार में बराबर शक्कर मिला ली जाय तो वह जलन, पित्त और कफ़ को नाश करता है।

पुरानी इमली—वात और पित्त को बढ़ाती है। खाने में खटमिट्ठी और जायकेदार होती है।

सूखी इमली—यह हलकी और पाचक होती है। इसका स्वाद खट्टा और मिट्ठा होता है। यह श्रम, प्यास और कृमि को नाश करती है।

इमली का पना—जलन और कफ़ पैदा करता है। खाने में खट्टा होता है किन्तु बात का नाश करता है। शक्कर मिलाकर खाने से दाह, पित्त और कफ़ को मिटाता है। खाने में स्वादिष्ट और रुचिकारक हो जाता है।

उपयोग—

आँखें दुखने पर—इमली की हरी पत्तियों को अण्डे के पत्ते में बाँधकर ऊपर से कपरौटी करके अग्नि में गरम करना चाहिए। उसके पश्चात् इन पत्तियों का रस निकालकर उसमें भूनी हुई फिटकरी और चना-भर अफ़ीम ताबें के बर्तन में घोंटना चाहिए और इस प्रकार तैयार हो जाने पर कपड़ा भिगोकर आँखों पर रखना चाहिए।

भूख कम लगने पर—इमली के पत्तों की चटनी बनाकर खाने से रुचि बढ़ती है। भूख लगती है और खाना हजम होता है।

भङ्ग के नशे पर—इमली को पानी में गलाकर और उसका गूदा उसमें मसलकर भंग के नशे में पिलाने से बहुत जल्दी उतर जाता है।

अरुचि और पित्त पर—जो इमली अन्दर से पक गई हो और जिनका गूदा मोटा-मोटा हो, उस प्रकार की इमली लेकर पानी में भिगो देना चाहिये और उनके भीग जाने पर उनको मसल कर उसमें शक्कर, इलायची के दाने, लौंग, कपूर और काली मिर्च मिलाकर बार-बार उसका कुल्ला करना चाहिये। इससे अरुचि का नाश होता है और पित्त शांत होता है। अरुचि को मिटाने के लिये यह बड़ा लाभकारी होता है।

कब्ज़ और पित्त पर—एक सेर इमली को लेकर दो सेर पानी में भिगो देना चाहिये और कम से कम चार पहर तक भीग जाने के बाद उसे चूल्हे पर चढ़ा देना चाहिये। जब आधा पानी जल जाय तो उसमें दो सेर शक्कर की चाशनी बनाकर मिला देना चाहिये। इस प्रकार बन जाने पर दो तोला से लेकर पाँच तोला तक इसका शर्बत बनाकर पीना चाहिये। कब्ज़ वालों को रात के समय और पित्त वालों को प्रातःकाल पीना चाहिये।

इमली की चटनी—पक्की इमलियों को भिगो देना चाहिये और भीग जाने पर हाथ से उनको मसल देना चाहिये। इसके बाद पोदीना, मेथी, धनिया, ज़ीरा और हींग भूनकर नमक तथा लाल मिर्च को पीसकर उसमें मिला देना चाहिये। यह चटनी बड़ी स्वादिष्ट बनती है।

इमली का मुरब्बा—पकी हुई इमली आध सेर लेकर उनके बीज निकाल देना चाहिये। फिर उन इमलियों को पानी में उबाल कर बूरे की चाशनी में मुरब्बा बना लेना चाहिये। खाने में पाचक और स्वादिष्ट होता है।

इमली की पकौड़ी—इमली को भिगोकर उसका पन्ना बना लेना चाहिये इसके बाद उसमें बेसन की पकौड़ी बनाकर डाल देना चाहिये और नमक लाल मिर्चा और भुना हुआ जीरा पीसकर मिला लेना चाहिये।

अनार

भारतवर्ष में अनार सर्वत्र पाया जाता है किन्तु कन्धार में होनेवाला अधिक प्रसिद्ध है। अरब में भी अनार बहुत होते हैं। यह तीन प्रकार का होता है। मीठा, खटमिट्ठा और खट्टा अनार खाने में अत्यन्त रुचिकर और शरीर को बल देने वाला होता है। इसमें यह विशेषता है कि निर्बल और सबल दोनों ही खा सकते हैं। रोगी मनुष्यों को भी अनार लाभ पहुँचाता है और किसी प्रकार की हानि नहीं करता। सबल और नीरोग मनुष्य भी इसको खाकर लाभ उठाते हैं।

अनार के खाने से शरीर में रक्त बढ़ता है। स्फूर्ति उत्पन्न होती है और बल प्राप्त होता है। जो लगातार अनार खाते हैं उनके शरीर का रङ्ग लाल हो जाता है और मुखाकृत पर तेज आ जाता है। यह खाने में अत्यन्त रसीला और स्वादिष्ट मालूम होता है। इसको बच्चे से लेकर बुड्ढे तक बड़ी रुचि और प्रेम के साथ खाते हैं। अनार के रस का पुष्टि कारक पाक बनाया जाता है। इस पाक को लोग अनार-पाक कहते हैं।

गुण—

मीठा अनार—त्रिदोष नाशक होता है, प्यास, जलन बुख़ार को दूर करता है। हृदय के रोगों को लाभ पहुंचाता है। गले और मुख के सभी रोगों को दूर करता है। इसके खाने से शान्ति मिलती है। वीर्य बढ़ता है। यह हलका कुछ कषेला और मल को रोकने वाला होता है। शरीर को बल और उत्तेजना प्रदान करता है।

अनार—हृदय के लिये लाभकारी होता है। यह खट्टा और कुछ गरम होता है। बात को नाश करता है। मल को रोकता है, अग्नि को तेज करता है। प्रकृति में कषेला तथा कफ़ और पित्त को दूर करता है।

अनार—मीठा अनार, शक्तिवर्द्धक और त्रिदोष नाशक होता है और खट्टा अनार, बात-पित्त का नाश करता है, बुख़ार को शान्त करता है, खाने में रोचक होता हैं, प्रकृति में पाचक और हलका होता है। अग्नि को तेज करता है।

पक्का अनार—बल बढ़ाता है, पित्त को नाश करता है। बात को शान्त करता है, ख़ाने में हलका और शीतल होता है। खून की खराबी, किसी प्रकार की जलन, मुर्छा और प्यास को दूर करता है। अनार शरीर की निर्बलता को दूर करता है, अजीर्ण को मिटाता है, भूख को पैदा करता है, रुचि को बढ़ाता है। ज्वर-वमन में फायदा करता है। यह खाने में अत्यन्त मीठा और वीर्य को बढ़ाने वाला होता है किन्तु कफ़ की वृद्धि करता है।

नारियल

नारियल को गरी और खोपरा भी कहते हैं। यह कर्नाटक, कालीकट और बंगाल में अधिक पैदा होता है। नारियल का पेड़ चालीस-पचास हाथ तक ऊंचा होता है। सात आठ वर्ष के बाद इसमें फल लगने आरम्भ होते हैं। नारियल के भीतर का जितना अंश खाने योग्य होता है यह गरी या खोंपरा कहलाता है। इसका छिलका बहुत सख्त होता है उसको तोड़ने पर एक गोला सा निकलता है, वही गरी का गोला कहलाता है। छिलके के सहित लोग उसको नरियल कहते हैं।

गरी खाई जाती है। इसको बारीक कतर कर मिठाइयों और पकवानों में भी डाला जाता है। गरीं गोले का तेल निकाला जाता है। उसको लोग खाते हैं, चिराग में जलाते हैं। और सिर के बालों में लगाते है। इसका तेल लकड़ी की बनी हुई चीज़ों में लगाया जाता है। साबुन बनाने के काम में भी इसका प्रयोग होता है। तेल को निकाल लेने के बाद जो खली रह जाती है वह जानवरों को खिलाई जाती है।

गुण

नारियल—यह ख़ाने में मीठा, भारी, चिकना और शीतल होता है, इससे हृदय को बल प्राप्त होता है। शरीर को यह पुष्ट करता है और रक्त पित्त को दूर करता है।

नारियल—यह वीर्य को बढ़ाता है कठिनाई से हज़म होता है, वस्ति का शोधन करता है। इसके ख़ाने से शरीर बलवान् और पुष्ट होता है। नारियल खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट किन्तु कफ़ को बढ़ाने वाला होता है। रक्त के दोष और जलन को शान्त करता है।

नारियल—खाने में रुचिपूर्ण होता है। हृदय को शक्ति देता है। पित्त को नाश करता है। पचने में भारी होता है, अग्नि का नाश करता है और कामदेव की शक्ति को बढ़ाता है।

कोमल नारियल—चिकित्सा में बहुत काम आता है। विशेषकर पित्त के बुखार को दूर करता है, दूषित रक्त की बीमारियों को मिटाता है प्यास को शान्त करता है। वमन, दाह और रक्त-पित्त से उत्पन्न हुए सभी रोगों में फ़ायदा करता है।

पक्का नारियल—यह जलन को बढ़ाता है। पित्त को पैदा करता है वीर्य की वृद्धि करता है, मल को रोकता है। इसके खाने से रुचि की वृद्धि होती है, अग्नि तेज होती है, शरीर में बल बढ़ता है। यह खाने में मीठा मालूम होता है।

सूखा नारियल—यह खाने से बड़ी कठिनाई से पचता है। शरीर में दाह उत्पन्न करता है। यह भारी और स्निग्ध होता है, मल को रोकता है, शरीर में बल और वीर्य की व्रद्धि करता है। यह रुचि को बढ़ाने वाला होता है।

नारियल का दूध—बल को बढ़ाता है, रुचि को पैदा करता है खाने में भी भारी और पाचक होता है। इससे वीर्य की वृद्धि होती है. किन्तु शरीर में जलन उत्पन्न होती है। यह कुछ गरम तथा बात, कफ़, गुल्म एवम् खांसी को लाभ पहुंचाता है।

नारियल का जल—प्यास और पित्त का नाश करता है। खाने में स्वादिष्ट और स्निग्ध तथा शीतल होता है। हृदय को शक्ति देता है, अग्नि को उद्दीप्त करता है, बस्ति का शोधन करता है। इसके खाने से वीर्य की बृद्धि होती है। नारियल का जल पित्त के ज्वर को दूर करता है।

नारियल का तेल—इसमें बाजीकरण का गुण होता है। धातु के निर्बल मनुष्यों को लाभ पहुँचाता है। बात-पित्त का नाश करता है। मूत्रघात और प्रमेह की बीमारी में बड़ा उपयोगी होता है। खांसी और श्वास के रोगियों को फ़ायदा पहुँचाता है। राजयक्ष्मा जैसे रोगों के लिए भी बड़ा उपयोगी होता है।

मीठा नारियल—यह खाने में शीतल, मीठा और पुष्टिकारक होता है। इससे बल की वृद्धि होती है, रुचि उत्पन्न होती है और अग्नि तेज़ होती है। इससे शरीर की कान्ति बढ़ती है। यह कृमि पैदा करने वाला और स्निग्ध होता है। इससे कफ़ की वृद्धि होती है काम की उत्तेजना बढ़ती है, जलन का नाश का होता है। मीठा नारियल तृषा, पित्त, परिश्रम, बात और अतीसार को दूर करता है।

उपयोग—

नारियल या गरी अनेक प्रकार की बीमारियों में काम आती है। चूहे के काटने पर—पुरानी गरी को मूली के रस में घिसकर लगाने से तुरन्त लाभ होता है।

भिलावां लग जाने पर—गरी को घिस कर या जलाकर लगाने से बड़ी जल्दी फायदा होता है और भिलावें का असर दूर हो जाता है।

खुजली पर—गरी के रस में थोड़ा-सा गंधक डालकर उसको उबालना चाहिये और तेल बन जाने पर उसे उतार लेना चाहिए। शरीर में इस तेल के लगाने से दाद और खुजली का नाश होता है।

खजूर या छुहारा

खजूर या छुहारा भिन्न-भिन्न पदार्थ नहीं हैं लेकिन फिर भी लोग खजूर को छुहारे से भिन्न समझते हैं। दोनों एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न हैं। बात यह है कि खजूर के जो फल पकने के कुछ पूर्व तोड़कर सुखा लिए जाते हैं वे छुहारे कहलाते हैं। और ईरान में यह फल बहुत होता है और इसलिये वहाँ के निवासी खाली छुहारा खाकर अपने कितने ही दिन व्यतीत करते हैं।

छुहारा सूखे फलों में गिना जाता है। इससे शरीर को स्वास्थ्य मिलता है। जो पुष्टकारक खाने के समान बनाए जाते हैं उन में अन्याय सूखे फलों (मेवों) के साथ छुहारा भी डाला जाता है। इसको लोग अलग से भी खाते हैं। इसकी गुठली और इसका गूदा दोनों ही काम के होते हैं। गुठलियों से तेल निकाला जाता है। वह जलाने और दवाओं में डालने के काम में आता है। इसके सिवा गुठली कई प्रकार से दवा के स्थान पर प्रयोग की जाती है। इसकी गुठली को घिसकर खाने से प्यास की अधिकता तुरन्त रुक जाती है। जब किसी को प्यास की अधिकता होती है और वह बार-बार पानी पीने से भी प्यास नहीं बुझती तो लोग इसी गुठली का उपयोग करते हैं।

छुहारा पुष्टकारक होता है। यह सभी लोग जानते हैं। छोटे और बड़े सभी लोग बड़े प्रेम से उसको खाते हैं। 'निर्बल लड़कों को छुहारा दूध में उबाल कर खिलाने से बड़ा लाभ होता है।'

गुण —

खजूर या छुहारा—खाने में मीठा और स्निग्ध होता है। हृदय को बलवान करता है। यह भारी और शीतल होता है।

इसके खाने से तृप्ति होती है, शरीर पुष्ट होता है। वीर्य और बल की वृद्धि होती है। बात-ज्वर का नाश होता है। रक्त-पित्त, क्षय तथा वमन (कै) शान्त होती है। प्यास बुझती है। खाँसी तथा श्वास की बीमारी में फ़ायदा करता है।

कच्चा खजूर— इसके खाने से त्रिदोष को शान्ति मिलती है, प्यास की तृप्ति होती है।

खजूर या छुहारा—जलन को दूर करता है, खाने में मीठा होता है, रक्त और पित्त का निवारण करता है, प्यास को दूर करता है। इसकी प्रकृति शीतल और स्निग्ध होती है, वह कफ और परिश्रम का दमन करता है शरीर को पुष्ट करता है इसके खाने से बल और वीर्य बढ़ता है।

उपयोग—

खजूर या छुहारा अनेक प्रकार से दवाइयों के काम में आता है। यहाँ पर उसके सम्बन्ध में कुछ मोटी-मोटी बातें नीचे दी जाती हैं जिनसे सर्वसाधारण को लाभ पहुँच सकता है।

खाज पर—छुहारे की गुठलियों को निकालकर उनको जला डालना चहिये। उसके पश्चात् उसकी राख में कपूर और घी मिलाकर खाज में लगाने से खाज अच्छी होती है और बहुत जल्दी फ़ायदा होता है।

आमबात पर—पाव-भर खजूर के फलों को निकालकर पानी में उबालना चाहिये और उसके बाद उस उबले हुए पानी को आमबात के रोगी को पिलाना चाहिए।

जलन पर—थोड़े-से खजूर के फलों को पानी में भिगो देना चाहिए और उनके गल जाने पर पानी में उनको मसल देना

चाहिए। इस प्रकार तैयार किया हुआ छुहारे का पानी पिलाने से जलन दूर होती है।

मस्तक की पीड़ा में—चाहे जितनी सिर में पीड़ा होती हो, छुहारे की गुठली को पानी में घिसकर मस्तक में लेप करने से मस्तक की पीड़ा शान्त हो जाती है।

प्रदर की बीमारी में—यह बीमारी स्त्रियों के लिए बड़ी भयंकर होती है। छुहारे की गुठलियों को कूटकर और घी में तलकर, गोपीचन्दन के साथ खाने से प्रदर की बीमारी को लाभ होता है और यदि लगातार इसका सेवन किया जाय तो सदा के लिए प्रदर की बीमारी अच्छी हो जाती है।

भूख बढ़ाने के लिए—छुहारे का गूदा निकालकर दूध में पकाना चाहिए और जब छुहारों का सत दूध में उतर आवे तो दूध को आग से उतार लेना चाहिए। इसके बाद दूध को गाढ़ा करके छुहारे के गूदे को निकालकर फेंक देना चाहिए। और दूध को पीजाना चाहिए। यह दूध बड़ा पुष्टकारक होता है। इससे भूख भी बढ़ती है और खाना हज़म होता है।

छुहारे से खाने की कितनी ही चीज़ें बनाई जाती हैं जो बड़ी स्वादिष्ट और बड़ी रुचिकर होती हैं। आवश्यकता समझकर उनकी कुछ बातों का नीचे उल्लेख किया जाता है।

छुहारे का अचार—छुहारे को पानी में भिगोकर गुठली निकाल देना चाहिए। इसके बाद पाव-भर किसमिस, आधा सेर अमचूर, पाव-भर सोंठ और तीन छटाक नमक को उसमें मिलाकर बढ़िया सिरके में डाल देना चाहिए और आठ-दस दिन तक धूप में सुखाना चाहिए।

छुहारे का मुरब्बा—छुहारे के गूदे को रात-भर पानी में भिगोना चाहिए और सबेरे उसको निकालकर बूरे की चाशनी

में डाल देना चाहिए। यह खाने में स्वादिष्ट तो होता ही है शरीर को भी पुष्ट करता है और बल को बढ़ाता है।।

छुहारे का हलुआ—पाव-भर छुहारे को पानी में भिगोकर पीस लेना चाहिए। और एक सेर दूध में उसको डालकर आग पर चढ़ा देना चाहिए। उसको चलाते-चलाते जब वह रवादार होने लगे तो पाव-भर घी और पाव-भर शक्कर डाल देना चाहिए। इसके सिवा दो माशा केसर, इलायची और कुछ मेवा डालकर दूध का छींटा देते रहना चाहिए। बस हलुआ तैयार हो जायगा।

छुहारे की चटनी—आधा पाव छुहारा लेकर पानी में भिगो देना चाहिए। उसके भीग जाने पर उसको आधपाव किसमिस, आधपाव अदरक, आधी छटाक कालीमिर्च, तीन लालमिर्च, भुनी हुई हींग और जीरा के साथ-साथ पीस कर डाल देना चाहिए और बाद में नीबू का रस मिला लेना चाहिए।

चिरौंजी

चिरौंजी के पेड़ नागपुर, मलावार प्रान्त के विभिन्न स्थानों और कोंकण तथा प्रायः पहाड़ी प्रदेशों में अधिक पाये जाते हैं। इसमें बहुत छोटे-छोटे फल किन्तु गुच्छे के गुच्छे लगते हैं। फलों के भीतर अरहर के समान छोटे-छोटे बीज निकलते हैं, उन्हीं को चिरौंजी कहते हैं।

चिरौंजी एक मेवा है, यह खाने में मीठी और स्वादिष्ट होती है। यह शरीर को पुष्ट करती है। इसको लोग पकवानों और मिठाइयों में डालते हैं। सर्दी के दिनों में जो पुष्टई के लिए लड्डू आदि बनाये जाते हैं, उनमें अन्यान्य मेवों के साथ

चिरौंजी भी डाली जाती है। इसका तेल भी निकाला जाता है, जो शीतल, मधुर और उपयोगी होता है।

चिरौंजी जहाँ पर पैदा होती है, वहाँ बागों में, जंगलों में इसके बहुत-से पेड़ होते हैं। चिरौंजी के ऊपर का छिलका बड़ा सख्त होता है। उसको तोड़ने पर, उसके भीतर जो चिरौंजी का दाना निकलता है, वह बहुत छोटा, देखने में सुन्दर और खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। लोग इसको बड़े प्रेम से सूखा भी खाते हैं। चिरौंजी को पेड़ों में तोड़ने और घर लाकर उसे खाने के योग्य फोड़ कर तैयार करने में बड़ा परिश्रम पड़ता है और उसमें समय भी बहुत लगता है।

गुण—

चिरौंजी—खाने में अत्यन्त मधुर और वृष्य होती है। इसकी प्रकृति अम्लकारक तथा भारी होती है। मल को स्तम्भ करती है। कुछ दस्तावर भी होती है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। कफ़ की उत्पत्ति होती है। चिरौंजी, बल को बढ़ाती है। खाने में प्रिय होती है। बात का नाश करती है। पित्त, जलन और ज्वर को शान्त करती है। क्षय-रोग, रक्त-विकार आदि रोगों में लाभ करती है।

चिरौंजी की मींगी—अत्यन्त स्वादिष्ट और मधुर होती है। वीर्य को बढ़ाती है, शरीर को पुष्ट करती है, दाह और पित्त का नाश करती है। प्रकृति में शीतल और रुचिकारक होती है।

चिरौंजी का तेल—मधुर होता है, किन्तु प्रकृति में कुछ उष्णता रखता है। कफ़ की उत्पत्ति करता है। पित्त तथा बात को शान्त करता है। शक्ति का वर्द्धन करता है। मस्तिष्क के

लिए .कूवत पैदा करता है। मस्तक पर मलने से मस्तिष्क के लिए बड़ा उपयोगी होता है।

उपयोग—

शीत पित्त पर—शरीर में शीत-पित्त की अधिकता होने पर चिरौंजी को दूध में पीसकर, उसकी मालिश करने से बड़ा लाभ होता है।

चिरौंजी का उबटन—चिरौंजी को पानी में पीस कर, गाढ़ा-गाढ़ा उबटन बनाकर, शरीर में मालिश करने से बड़ा लाभ होता है, इससे बदन उज्वल होता है, जलन शान्त होती है, शरीर में कान्ति बढ़ती है। और आत्मा को प्रसन्नता होती है।

चिरौंजी की पट्टी—त्योहारों में खाने के लिए तथा व्रत के दिन फलाहार करने के लिए, लोग चिरौंजी की पट्टी तैयार करते हैं। यह हलकी और पाचक होती है। इसके बनाने की विधि यह है कि पहले कड़ाही को आग पर चढ़ाकर उसमें थोड़ा-सा घी डाल देते हैं और उसके पक जाने पर उसमें, साफ़ किये हुए चिरौंजी के दाने छोड़ देते हैं, उसके थोड़े ही देर में उसमें शक्कर छोड़कर पानी का छींटा देते हैं तदुपरांत उसे उतार कर थाल में फैला देते हैं उसके जम जाने पर उसकी पट्टी तैयार कर लेते हैं।

चिरौंजी की बर्फी—चिरौंजी का छिलका निकालकर उसके दाने आधा पाव लेना चाहिए और उसे कड़ाही में डालकर भून लेना चाहिये। इसके पश्चात् आधा सेर शक्कर की चाशनी करके उसी में डाल देना चाहिए और जमा लेना चाहिए।

पकवान, मिठाइयों और खाने के लिए जो लड्डू आदि पुष्टिकारक चीजें बनाई जाती हैं, उनमें सर्वत्र चिरौंजी का उपयोग होता है। मेवे की खीर में अन्यान्य मेवों के साथ, चिरौंजी को भी डालते हैं। ये चीजें बड़ी रुचिकारक और स्वादिष्ट होती हैं। इनके खाने से शरीर पुष्ट होता है और बल बढ़ता है।

महुआ

महुआ के पेड़ हमारे देश में सभी जगह होते हैं परन्तु गुजरात में इसके वृक्ष बहुत पाये जाते हैं। इसका पेड़, इमली के पेड़ की तरह बहुत बड़ा होता है।

इसके फल दो प्रकार के होते हैं, एक तो उसका फल महुआ होता है और दूसरा जो बादाम की भाँति, किन्तु उससे कुछ बड़ा होता है, उसको गुल्लू कहते हैं। महुआ खाने के काम में आता है और गुल्लू का तेल निकाला जाता है।

महुआ पककर जब पेड़ से गिरता है तो उसका रंग बिलकुल सफेद होता है। उसे लोग बीनकर घरों में लाते हैं और धूप में सुखा डालते हैं। सूख जाने पर उसका रंग लाल तथा कुछ श्याम मिश्रित लाल हो जाता है। यह बहुत गर्म होता है, इसलिए देहात में लोग इसको सुखाकर रख छोड़ते हैं और जाड़े के दिनों में कितने ही तरह से उसको खाने के काम में लाते हैं।

गुल्लू का तेल भी देहातों में बहुत काम में लाया जाता है। उसके ऊपर का छिलका बड़ा सख्त और पतला होता है।

उसको फोड़कर लोग छिलका निकाल डालते हैं और उसके भीतर की कोमल गुल्लू धूप में सुखा लेते हैं। उसके बाद, सरसों और तिलों की भाँति सूखे गुल्लुओं को कोल्हू में पेल-कर लोग उनका तेल तैयार कर लेते हैं। यह तेल भी बहुत गर्म होता है, इसलिए ग़रीब लोग उसको जाड़े के दिनों में खाने के काम में लाते हैं। जो बहुत ग़रीब नहीं होते, वे इस तेल को जलाने के काम में लाते हैं। जाड़े के दिनों में यह तेल घी की भाँति जम जाता है, उस अवस्था में यह तेल जमा हुआ कुछ पीलापन लिए हुए मटमैला होता है।

महुआ, भिन्न-भिन्न तरीके से खाने के काम में तो आता ही है, उससे शराब भी बनाई जाती है। पहले इसकी शराब लोग अपने घरों में तैयार कर लिया करते थे, परन्तु अब कुछ समय से इसके प्रतिकूल क़ानून बन जाने के कारण, इसकी शराब बनाना मना हो गया है।

गुण—

महुआ—बहुत गर्म और स्निग्ध होते हैं। खाने में अत्यधिक मीठे होते हैं। मल को बाँधते हैं, बल को बढ़ाते हैं, धातु को उत्पन्न करते हैं। वायु और पित्त का नाश करते हैं। खाँसी, क्षत-क्षय तथा राजयक्ष्मा के रोग में फायदा करते हैं।

गुल्लू का तेल—इसकी प्रकृति उष्ण होती है। यह खाने में शक्ति-वर्द्धक होता है। शुक्र को उत्पन्न करता है। शरीर की कान्ति बढ़ाता है। पुष्टकारक होता है। वायु-जनित रोगों को शान्त करता है। स्वाद में मधुर तथा कुछ कषैला होता है। कफ़, पित्त-ज्वर का नाश करता है। कहीं-कहीं पर इसको लोग महुआ का तेल कहते हैं।

उपयोग-

साँप के काटने पर—महुए के बीज अर्थात् गुल्लू को पानी में घिसकर अंजन करना चाहिए—इससे विष की शान्ति होती है।

कंठ सर्प पर महुए के बीज अर्थात् गुल्लू को पानी में घिसकर पिलाना चाहिए। तुरन्त अपना प्रभाव दिखाता है।

वायु के कारण दर्द पर—शरीर में कहीं पर भी सर्दी-बादी के कारण पीड़ा होने पर या किसी गाँठ या जोड़ में दर्द होने पर गुल्लू के तेल की मालिश करने पर लाभ होता है। उसकी मालिश करके महुए के पत्ते गर्म करके ऊपर से बाँध देने से और शीघ्र फ़ायदा होता है।

सर्दी के प्रकोप पर—जाड़े के दिनों में सर्दी के लग जाने पर या शरीर में कहीं पर शीत का प्रकोप होने पर लोग महुआ पकाकर खाते हैं, उससे लाभ होता है।

कटहल

कटहल का पेड़ साधारणतया बड़ा होता है। पाँच वर्ष के बाद कटहल के पेड़ में फल आने लगते हैं भारतवर्ष में यह सर्वत्र पाया जाता है किन्तु पर्वतीय स्थानों में इसकी पैदावार अधिक होती है। कटहल का फल बहुत बड़ा होता है, यदि कोई कटहल का पेड़ भलीभाँति फला तो उसमें लगभग पाँच सौ कटहल तक एक ही फ़सल में होते हैं।

कटहल का फल कई प्रकार से खाया जाता है, इसका कच्चा फल तरकारी के काम में आता है इसकी तरकारी लोग बड़ी

रुचि से बनाते हैं और खाने में वह स्वादिष्ट होती है। कटहल कच्चा होने पर जब पक जाता है तो वह भीतर बिल्कुल सफेद होता है। परन्तु जब पक जाता है, तो उसका रंग पीला हो जाता है। पके कटहल की अपेक्षा कच्चे कटहल की तरकारी अधिक अच्छी होती है।

पके कटहल का खाली गूदा लोग खाते हैं। जहाँ पर कटहल अधिक पैदा होता है वहाँ पर लोग, रोटी-दाल की तरह इसको खाकर तृप्ति का अनुभव करते हैं। पक जाने पर कटहल तरकारी के काम का तो नहीं रहता परन्तु उसके पके हुए बड़े-बड़े बीज की तरकारी बनाई जाती है, ये बीज बड़े स्वादिष्ट और सोंधे होते हैं। बीजों को आग में पकाते समय, उनमें छेद कर दिये जाते हैं, नहीं तो वे बड़े ज़ोर से फूटा करते हैं।

बहुत से लोग कटहल के बीजों में मिट्टी लगाकर रख छोड़ते हैं और वर्षा के दिनों में उनको आग में पकाकर खाया करते हैं। कोंकण की ओर बहुत से आदमी, कुछ दिनों तक कटहल पर ही निर्वाह करते हैं। वे लोग अनाज की भाँति कटहल के गूदे को धूप में सुखा लेते हैं और बहुत-सा अपने-अपने घरों में भर लेते हैं। इसके बाद जब उनको, उसे खाना होता है, तो उसे निकालकर काम में लाते हैं जिस प्रकार लोग अनाज को साफ़ करके पीस लेते हैं और उसके बाद उसकी रोटी बनाते हैं, उसी प्रकार सूखे कटहल के गूदे को भी लोग पीस डालते हैं और फिर उसके आटे की रोटी, पूड़ी या और जो उनके जी में आता है, बनाते हैं। कटहल के गूदे की वहाँ के लोग खीर और कढ़ी भी बनाते हैं। और ग़रीब-अमीर सब ही लोग उसको खाते हैं। कटहल का छिलका कोई बेकार नहीं करता। अपने यहाँ तो लोग प्रायः उसको फेंक देते हैं परन्तु

जहाँ पर यह पैदा होता है, वहाँ लोग इसको बहुत उपयोगी समझते हैं और इसके छिलकों को जानवरों को खिलाते हैं जिससे, जानवर पुष्ट होते हैं। कटहल खाने के पश्चात् पान नहीं खाना चाहिए। लोगों का कहना है कि पान खाने से आदमी का पेट फूल जाता है।

कटहल की दो जातियाँ होती हैं। एक जाति तो यह है जिसके गुणों का उल्लेख ऊपर किया गया है और दूसरी जाति का जो कटहल होता है, वह खाने के काम में नहीं आता। उसके पेड़ की लकड़ी बड़ी मजबूत होती है।

गुण—

कच्चा कटहल—यह मल को बांधता है, यह खाने में स्वादिष्ट होता है। त्रिदोष उत्पन्न करता है। रक्त को बढ़ाता है। प्रकृति में भारी कषेला और बादी होता है। कफ बढ़ाता है। जलन और पित्त का नाश करता है।

पक्का कटहल—कुछ शीतल होता है, खाने से तृप्ति होती है। यह धातु को बढ़ाता है। स्निग्ध और स्वादिष्ट होता है। शरीर में मांस बढ़ाता है, कफ उत्पन्न करता है। वीर्य की वृद्धि करता है शरीर को पुष्ट करता है। बात तथा रक्त पित्त का नाश करता है। इसका बीज खाने में मधुर होता है किन्तु जड़ और विष्टम्भक होता है।

पक्का कटहल—मधुर और पुष्टकारक होता है। इसकी प्रकृति भारी और शीतल होती है। वह बात और पित्त का नाश करता है कफ को बढ़ाता तथा वीर्य और बल की वृद्धि करता है शरीर को पुष्ट करता है और आत्मा को तृप्ति करता है। खाने में स्वादिष्ट तथा मांसवर्द्धक होता है।

कच्चा कटहल—बादी, कषैला और भारी होता है। बात उत्पन्न करता है किन्तु बल को बढ़ाता है। कफ का नाश करता है।

कटहल के बीजों की मींगी—वीर्य को बढ़ाती है, बात-पित्त का नाश करती है। कफ को दमन करती है और शरीर को पालती है। खाने में स्वादिष्ट और रुचिकारक होती है।

हरा और पुराना कटहल—मल को अवरोध करता है, खाने में मधुर और बलकारक होता है। प्रकृति में दोषल, गुरु और बातल होता है।

कटहल का पानी—वृष्य किन्तु मधुर होता है, त्रिदोष का नाश करता है।

उपयोग—

१ कटहल की तरकारी—इसकी तरकारी बड़ी स्वादिष्ट तथा लाभकारी होती है, उसके बनाने का तरीका यह है कि कटहल के ऊपर का छिलका छीलकर निकाल डालना चाहिए और फिर उसके गूदे को काटकर छोटे-छोटे टुकड़े कर डालने चाहिए। उसके पश्चात् उसको उबाल डालना चाहिए। फिर किसी बटलोही में घी डालकर हींग डालना चाहिए, उसकी महक मालूम होने पर गर्म मसाला डालकर उसे भून लेना चाहिए और उसके पश्चात् उबले हुए कटहल को उसमें छोड़ कर छौंक देना चाहिए। उसके घी में भुन जाने पर नमक और थोड़ा-सा पानी छोड़ देना चाहिए, अन्त में पक जाने पर उतार लेना चाहिए।

कटहल का अचार—कटहल का छिलका निकाल कर, गूदे के बड़े-बड़े टुकड़े कर लेना चाहिए और फिर उनको जल के साथ

उबाल लेना चाहिए। फिर उसको ठंडा करके हलदी, धनियां, लालमिर्चा, और नमक पीस कर उसमें गबड़ देते हैं। उसके बाद उसको एक मिट्टी के अच्छे बर्तन में भरकर उसमें कड़ुवा तेल इतना डाल देते हैं कि कटहल के टुकड़े बिल्कुल डूब जाते हैं। इसके बाद उसको नित्य धूप में रखकर गर्मी पहुँचाई जाती है। जितने ही अधिक दिन बाद उसको खाना आरम्भ किया जाता है, उतना ही वह स्वादिष्ट बनता है। यह अचार बहुत दिनों तक रहता है।

कटहल का अचार साधारणतया एक वर्ष तक चलता है परन्तु कुछ लोग और भी अधिक समय तक उसका प्रयोग करते हैं। कटहल के गूदे को कुछ लोग उबाल कर और कुछ लोग बिना उबाले ही उसको मसाले में मिलाकर तेल से डुबो देते हैं। दोनों में अंतर यह होता है कि जो कटहल उबाला नहीं जाता, उसका अचार बहुत दिनों में खाने के योग्य गलकर तैयार होता है। पीले कटहल का अचार सब से बढ़िया होता है।

केला

भारतवर्ष में जितने भी फल होते हैं, उनमें आम सर्वोत्तम गिना जाता है और आम के बाद लोग केला को स्थान देते हैं। केला प्रायः सभी जगहों में पाया जाता है। लेकिन गोमांतक, कर्नाटक और बसई प्रान्त में केले बहुत पैदा होते हैं। इसकी लगभग बीस जातियाँ होती हैं। जंगलों में जो केले के वृक्ष अपने आप उगते हैं, उनको जंगली केला कहा जाता है। कच्चा और पक्का दोनों तरह से केला खाया जाता है। कच्चे

केले की तरकारी बनती है। और पके हुए केले खाए जाते हैं। इसके सिवा पके केलों का रायता भी बनाया जाता है। केले खाने में बड़े स्वादिष्ट होते हैं। इनके खाने से शरीर पुष्ट होता है। भूख शान्त होती है।

जहाँ पर केला बहुत होता है, वहाँ पर लोग इसको सुखाकर बहुत-सा केला जमा कर लेते हैं और उसको अनाज की तरह पर काम में लाते हैं। सूखे हुए केलों को पीसकर आटा बना लेते हैं। उसकी रोटी तथा अन्यान्य चीजें बनाते हैं।

इस प्रकार जो केला सुखाया जाता है, वह कच्चा काटकर ही सुखा लिया जाता है। इसमें शरीर के लिए पोषण-शक्ति होती है। और वह प्रायः गोल आलू के समान खाद्य अंश में होता है। केले को खाकर संतोषपूर्वक कोई भी व्यक्ति अपने दिन काट सकता है।

केला की भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं और उनमें भिन्न-भिन्न परिमाण में खाद्य अंश होता है। बाजार में जो केले बिकते हुए देखे जाते हैं, उनमें चिनिया केले और चटगाँव के केले बहुत होते हैं। इनमें चटगाँव का केला बहुत प्रसिद्ध है। उसमें खाद्य अंश दूसरों की अपेक्षा अधिक होता है। इसलिए लोग उसी को पसन्द करते हैं केले के फलों में प्रति शत सत्तर से लेकर अस्सी भाग तक खाद्य अंश होता है।

केला जब सब्ज़ रंग का होता है उसी समय लोग उसे काटकर और सुखाकर अपने घरों में भरने लगते हैं। बहुत कच्चा केला काटना और सुखाना अच्छा नहीं होता। इसलिए कि अधिक कच्चा होने के कारण सुखाने पर उसमें सुगन्ध नहीं पैदा होती।

केले के फलों में काले रङ्ग का कुछ सख्त हिस्सा होता है। जिस केले में यह काला हिस्सा बना रहता है उसको देख कर यह मालूम हो जाता है कि केला अच्छी तरह पका नहीं है अथवा बहुत कच्ची अवस्था में ही काटा गया है।

जो लोग केला को अनाज की भाँति काम में लाते हैं, वे कच्चे केलों का छिलका निकाल कर उसके भीतर के हिस्से को टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं और उसके बाद उसको धूप में खूब सुखाते हैं। जब कभी उनको आवश्यकता होती है तो उसको पीसकर और छानकर आटा तैयार कर लेते हैं।

कच्चे केले को कई प्रकार से लोग खाते हैं, उसकी तरकारी बड़ी पुष्टकारक और आमाशय के लिये अत्यन्त उपयोगी होती है। कच्चे केले को टुकड़े-टुकड़े करके जल में पहले धोते हैं और उसके बाद उसको आग में भूनते हैं। उनके पक जाने पर उसका छिलका निकालकर फेंक दिया जाता है और भीतर का खाने वाला हिस्सा मट्ठा, दही, शक्कर और नमक आदि अपने रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न चीज़ों के साथ खाया जाता है। यदि इसके साथ जीरा को भूनकर मिला दिया जाय तो वह और भी उपयोगी और लाभदायक हो जाता है।

पके हुये केले खाने में बड़े स्वादिष्ट और मीठे होते हैं। छोटे-बड़े सभी लोग बड़ी रुचि के साथ उसको खाते हैं। केले की प्रकृति भारी होती है और प्राय: कुछ कठिनता से हजम होता है, इसलिये जिनकी पाचन-शक्ति कुछ निर्बल होती है, उनके लिये उसका व्यवहार करना प्राय: हानिकारक हो जाता है। जिनका स्वास्थ्य अच्छा है और पाचन-शक्ति निर्बल नहीं है उनके लिये केला अत्यन्त उपकारी और सुखाद्य है।

पके हुये केले से काफ़ी तैयार की जाती है और इसके लिये पहले केले को सुखाया जाता है और उसके बाद उससे वह तैयार की जाती है। उसका स्वाद बड़ा अच्छा होता है और यह काफ़ी की भाँति हानिकारक नहीं होती है।

पके केले को खाने के पहले कुछ लोग उसमें नींबू का रस मिला लेते हैं जिससे उसका खाद्य अंश और भी अधिक उपयोगी हो जाता है। एवम् उसका अपाचन-अंश परिवर्तित हो जाता है। इसको निर्बल मनुष्य भी बड़ी आसानी से पचा सकता है।

गुण—

केले की साधारण फली—यह मधुर और वीर्य को बढ़ाने वाली होती है। कुछ कषेला और शीतल होती है। यह रक्त-पित्त का नाश करती है। हृदय को फ़ायदा पहुंचाती है। खाने में रुचिपूर्ण होती है। कफ़ को उत्पन्न करती है और पचने में भारी होता है।

केले की कोमल फली—इसकी प्रकृति शीतल और मधुर होती है। कषेली होने के साथ-साथ रुचिकारक होती है। अम्ल और पित्त का नाश करती है।

केले की मध्यम अवस्था का फल—यह प्यास को दूर करता है। रक्त-पित्त को शान्त करता है। नेत्र-रोग को लाभ पहुंचाता है और प्रमेह, रक्तातिसार तथा ज्वर को दूर करता है। इसकी प्रकृति ग्राही, कड़वी कषेली और रूखी होती है।

कच्चा केला—मल को रोकता है। यह शीतल और कषेला होता है। वात और कफ़ उत्पन्न करता है। इसके खाने से बल की वृद्धि होती है। शरीर पुष्ट होता है।

पक्का केला—कषेला और मधुर होता है। बल को बढ़ाता है। रक्त पित्त का नाश करता है। मन्दाग्नि पैदा करता है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है, प्यास की शान्ति होती है, शरीर में कान्ति पैदा होती है, कफ का नाश करता है, परन्तु कठिनता से हज़म होता है।

पक्का केला—खाने में मधुर और रुचिकारक होता है। बात का नाश करता है। यह कोमल और शीतल होता है। क्षय, दाह और रक्त-पित्त को शान्त करता है। प्रदर के रोग में फायदा करता है। पथरी के रोग को दूर करता है। बल को बढ़ाता है। भोजन से पहले खा लेने से हानि करता है।

पक्का केला—बल को बढ़ाता है। कषेला और मधुर होता है। वीर्य की वृद्धि करता है। इससे शरीर की कान्ति बढ़ती है। खाने में स्वादिष्ट होता है। शरीर में मांस बढ़ता है। कफ को उत्पन्न करता है। पित्त-रक्त को दूर करता है। प्रमेह के रोग में फ़ायदा करता है। क्षुधा और नेत्र के रोगों को दूर करता है।

उपयोग—

पागल कुत्ते के काटने पर—जंगल के पके हुए केलों के बीज खाने और उनको पीसकर काटे हुए पर लगाने से बड़ा लाभ होता है। कुत्ते के विष को दूर करने के लिए इन बीजों में बड़ा गुन होता है।

१ प्रदर और धातु के रोग में—एक पका हुआ केला, आधा तोला घी के साथ, सुबह-शाम आठ दिनों तक लगातार खाना चाहिए और यदि इससे सर्दी मालूम हो तो उसमें चार-पाँच बूँदें शहद की भी मिला लेनी चाहिए।

पित्त की अधिकता में—पके हुए केले को घी के साथ खाने से पित्त अत्यन्त शीघ्र शान्त होता है।

शरीर की गर्मी और प्रमेह में—केलों का गूदा निकालकर उसे छाया में सुखाना चाहिए और उसके सूख जाने पर उसे पीस कर चूर्ण बना लेना चाहिए। उसके बाद उसमें शक्कर मिलाकर, पानी के साथ सेवन करना चाहिए। इससे बहुत लाभ होता है।

खाने की चीज़ें—

केले की तरकारी—पहले कच्चे केले का छिलका निकाल कर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर डालने चाहिए। फिर एक बटलोही में तेल या घी डालकर उसमें मेथी या हींग से भूनना चाहिये, उसकी महक उठने पर हल्दी, धनिया, लालमिर्चा पीसकर उसी में डाल देना चाहिये और उसके बाद तरकारी उसमें छोड़ देना चाहिये। उसके भुन जाने पर, उसमें थोड़ा-सा दही पानी में घोलकर छोड़ देना चाहिये और नमक छोड़-कर ढक देना चाहिये। पक जाने पर रसादार उतार लेना चाहिये।

दूसरी विधि—केलों को छीलकर टुकड़े-टुकड़े कर लेना चाहिये और बटलोही में तेल या घी डालकर हींग को भूनना चाहिये। महक आने पर, गर्म मसाला पीसकर, उसमें डाल देना चाहिये और उसके बाद तरकारी को धोकर डाल देना चाहिये। थोड़ा-सा भुन जाने पर पानी और नमक डाल-कर उसे ढक देना चाहिये। तैयार हो जाने पर उतार लेना चाहिये।

पके केले का मुरब्बा—पहले केले के गूदे के दो-दो टुकड़े करके रख लेना चाहिये और फिर थोड़ा-सा पानी और एक

नींबू का रस और आधी छटाक बूरा शक्कर मिलाकर उन केले के टुकड़ों को उबाल लेना चाहिये। इसके पश्चात् पानी से निकाल कर कपड़े में सुखा लेना चाहिये और अंत में शक्कर की चाशनी में डालकर पका लेना चाहिये। केले का मुरब्बा बड़ा स्वादिष्ट और खाने में रुचिकर होता है।

केले की पकौड़ी—केले की कच्ची फली को पहले उबाल लेना चाहिये। फिर चने का बेसन उसमें मिला कर खूब मथ डालना चाहिये। इसके बाद गर्म मसाला और नमक डालकर मुंगौरी की तरह घी में बना लेना चाहिये।

पिश्ता

पिश्ते का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। यह फारस, बुखारा और अफ़गानिस्तान में अधिक पैदा होता है। पिश्ते के ऊपर एक पतला किन्तु कठोर छिलका होता है। उसको छीलने से भीतर हरी-हरी गरी निकलती है। इस गरी पर लाल रङ्ग की बहुत छोटी-छोटी बूंदें भी होती हैं।

पिश्ता एक बहुत प्रसिद्ध और पुष्टकारक मेवा है। इसको खाने के सिवा, तेल भी इसका निकाला जाता है। इसका तेल बड़ा उपयोगी और पित्त को शान्त करने का गुण रखता है। इसका तेल प्रायः शीतकाल में मस्तक पर मला जाता है जिससे बड़ा लाभ होता है। इसमें रँग कर रेशम को लाल किया जाता है।

गुण—

पिश्ता—यह भारी और स्निग्ध होता है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। इसकी प्रकृति उष्ण और धातुवर्द्धक

होती है। पिश्ता रक्त को शुद्ध करता है। स्वाद को बढ़ाता है। पित्त को उत्पन्न करता है। कुछ दस्तावर होता है। कफ़ का नाश करता है। बात, गुल्म तथा त्रिदोष को दूर करता है।

उपयोग–

\पुष्टई के लिये—शरीर को पुष्ट करने के लिये पिश्ता बड़ा उपयोगी होता है। गर्म होने के कारण इसका उपयोग जाड़े के दिनों में अधिक किया जाता है। पिश्ता जहाँ पर नहीं होता, वहाँ पर यह बहुत तेज़ बिकता है। अमीर लोग सर्दी के लिये इसके द्वारा तरह-तरह की चीज़ें बनवाकर खाते हैं।

शरीफ़ा

शरीफ़ा के वृक्ष भारतवर्ष में सर्वत्र पाये जाते हैं। इसको हिन्दी बोलनेवाले सीताफल या सरीफ़ा कहते हैं। इसके पेड़ में चार-पाँच वर्ष के बाद फल आने लगते हैं।

गुण–

शरीफ़ा—इसके खाने से तृप्ति होती है, रक्त बढ़ता है। खाने में स्वादिष्ट होता है। प्रकृति में अत्यन्त शीतल और हृदय के लिये हितकारी है। बल की वृद्धि करता है, मांस को बढ़ाता है। दाह को शान्त करता है। रक्त-पित्त और बात को शान्त करता है।

शरीफ़ा—यह मधुर और शीतल होता है, हृदय की बल-वृद्धि करता है। बल को बढ़ाता है और कफ़ उत्पन्न करता है। खाने में स्वादिष्ट तथा पुष्टकारक होता है। यह पित्त का नाश करता है।

उपयोग—

जलन को शान्त करने के लिए—शरीर की जलन तथा दाह होने पर शरीफ़ा को रात में ओस में रख देना चाहिए और सवेरे उठकर उसे खा लेना चाहिए। इससे जलन और दाह शान्त हो जाती है।

सिर में जुएँ पड़ जाने पर—शरीफ़े के बीजों को बारीक पीसकर सिर में लगाना चाहिए और रात को सोते समय एक मोटा कपड़ा सिर में कसकर बाँध कर सोने से, सिर के जुँ सब मर जाते हैं। इसका प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह दवा आँखों में न लगने पावे, क्योंकि यह आँखों को नुकसान पहुँचाती है।

शरीफ़ा अधिकतर खाने के ही काम में आता है। उससे स्वास्थ्य और बल की वृद्धि होती है, परन्तु इसके अतिरिक्त उसका और कोई अधिक उपयोग नहीं होता।

अनन्नास

अनन्नास का पेड़ प्रायः खेतों की मेड़ों तथा सड़कों के किनारे पैदा होता है। इसके पेड़ में यह बात होती है कि फल इसके बीच हिस्से में लगते हैं अनन्नास का रंग कुछ पीला और लाल रंग का होता है।

अनन्नास खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है, खाली खाने के सिवा इसका मुरब्बा भी बनाया जाता है। वह खाने में अत्यन्त रुचिकारक और लाभ पहुँचाने वाला होता है। अनन्नास के बीच का हिस्सा खाने के योग्य नहीं होता। इसलिये इसको खाते समय निकालकर फेंक देना चाहिए और यदि भूल से,

कभी कोई उसे खा जाय, तो उसके बाद, तुरन्त प्याज दही और शक्कर मिलाकर खा लेना चाहिए। उपवास के दिन अनन्नास का खाना मना है।

जिन स्त्रियों के पेट में गर्भ होता है, उनको अनन्नास कभी न खाना चाहिए, जिनको यह बात मालूम नहीं होती और धोखे से इसको खा लेती हैं, उनको कभी-कभी इससे बड़ी क्षति पहुँचती है। इसलिए उनको यह जानना और इसका परहेज़ करना बहुत आवश्यक है। अन्यथा हानि ही होती है।

गुण—

कच्चा अनन्नास—खाने में रुचिकारक होता है। हृदय को लाभ पहुँचाता है। यह भारी कफ़-पित्त उत्पन्न करने वाला होता है। इसके खाने से श्रम और कृमि का नाश होता है।

पक्का अनन्नास—खाने में स्वादिष्ट किन्तु पित्त पैदा करता है। यह रस-विकार तथा आतप-विकार को दूर करता है।

उपयोग—

अजीर्ण होने पर—पहले अनन्नास को लेकर उसमें फाँकें कर देनी चाहिए। उसके बाद काली मिर्च और सेंधा नमक पीसकर उसमें छिड़क देना चाहिए और फिर आग पर थोड़ा सा भुल-भुलाकर उसे खा लेना चाहिए। इससे अजीर्ण तुरन्त दूर होता है।

कृमि पर—अनन्नास खाने से बड़ा लाभ होता है और इससे उसका नाश भी होता है। कृमि के लिए यह बड़ा उपयोगी है।

पेट में बाल चला जाने पर—धोखे में जब कोई बाल खा जाता है अथवा वह पेट में चला जाता है तो उससे बड़ी

तकलीफ़ होती है। ऐसी अवस्था में अनन्नास खाने से फायदा होता है और उसके खा जाने से जो पीड़ा उत्पन्न होती है, वह अच्छी हो जाती है।

फालसा

फालसे के पेड़ बगीचों के साथ हुआ करते हैं। फालसा, साधारणतया सभी जगह होता है किन्तु उत्तरी हिन्दुस्तान में इसकी पैदावार अधिक होती है इसका फल पीपल के फल के समान बहुत छोटा होता है। फालसा खाने में मीठा होता है।

फालसा खाने में स्वादिष्ट होता है, कच्चा और पक्का दोनों तरह से फालसा काम में लाया जाता है। इसकी प्रकृति शीतल होती है, इसलिये इसका शर्बत बनाकर गर्मी के दिनों में पिया जाता है। ग्रीष्मकाल में जहां पर अधिक गर्मी पड़ती है, वहां पर फालसे का शर्बत पीने की बहुत रिवाज पाई जाती है। और गर्मी को शान्त करने के लिये, फालसे का शर्बत बड़ा लाभकारी तथा शरीर को ठण्डा रखने वाला होता है।

गुण--

कच्चा फालसा—कड़ुआ और खट्टा होता है, कफ़ का नाश करता है, बात को मिटाता है और पित्त उत्पन्न करता है। खाने में कषेला किन्तु हलका होता है। उसकी प्रकृति खट्टी होने के साथ-साथ कुछ उष्ण होती है।

पक्का फालसा —खाने में मधुर और रुचिपूर्ण होता है। पित्त का नाश करता है, प्रकृति में शीतल और पुष्टकारक होता है। हृदय को लाभ पहुँचाता है। तृषा, पित्त और दाह को

मिटाता है। रुधिर के विकारों को शुद्ध करता है। ज्वर, क्षय और बात का नाश करता है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। पचने में मधुर होता है।

उपयोग–

पित्त के विकार और हृदय के रोगों पर—पके हुये फालसों का रस निकालकर थोड़े से पानी में मिला लेना चाहिये और उसमें थोड़ा-सी सोंठ पीसकर, शक्कर और सोंठ को उस पानी में मिले हुये रस के साथ मिलाकर पिलाना चाहिये। इससे लाभ होता है।

जलन को शान्त करने के लिये—पके हुए फालसों को शक्कर के साथ खाने से तुरन्त लाभ होता है और शरीर की जलन शान्त हो जाती है।

फालसे का मुरब्बा—पहले पानी को गर्म करके आधा सेर पके फालसों को उसमें भिगो देना चाहिये। जब फालसे गल जायं तो उनको ठंढे पानी से धो डालना चाहिये। फिर एक छटाक बूरा और पाव भर पानी उसमें डालकर फालसों को फिर उबालना चाहिये। एक उबाल आ जाने पर उनको पानी से निकालकर शक्कर की चाशनी में छोड़ देना चाहिये और ऊपर से केवड़ा डाल देना चाहिये।

फालसे का शर्बत—फालसों को लेकर, पहले उन्हें मसलकर उनका रस निकाल लेना चाहिये। फिर उस रस में शक्कर छोड़कर आग में चढ़ा देना चाहिये और उसकी चाशनी बना लेना चाहिये। यही चाशनी फालसे की शर्बत होगी। यह शर्बत शरीर को ठंढक पहुँचाने के लिये बड़ा उपयोगी होता है और कितनी ही बीमारियों में काम आता है। सूजाक में

यह शर्बत फायदा करता है। पेशाब की जलन को मिटाता है। दिल और दिमाग़ को ताक़त पहुँचाता है और तर रखता है।

कमरख

कमरख के पेड़ तो साधारणतया सभी स्थानों में होते हैं। कोंकण प्रान्त में कमरख बहुत होता है। इसके पेड़ में विशेषता है कि वह सदा हरा-भरा रहता है और हमेशा उसमें फल लगते रहते हैं। उसमें फल आने के लिये कोई एक मौसिम नहीं होता।

कमरख खाने के काम में आता है उसका स्वाद खट्टा होता है। कच्चा होने पर इसका रंग बिल्कुल हरा होता है परन्तु पक जाने पर उसमें कुछ पीलापन आ जाता है। पके कमरख यों ही खाये जाते हैं परन्तु खट्टे होने के कारण वे अधिक नहीं खाये जा सकते। कमरख के मुरब्बे, अचार और चटनी आदि खाने की कितनी ही चीजें बनाई जाती हैं।

कच्चा कमरख बहुत खट्टा होता है। पक जाने पर उसकी खटाई में वह तीक्ष्णता नहीं रहती। पका हुआ कमरख ज़रा भूनकर तथा काली मिर्च के साथ पीसकर और शक्कर मिला कर खाने से बड़ा स्वादिष्ट हो जाता है और किसी प्रकार की विशेष हानि भी नहीं करता। कमरख पकने पर बड़ा सुन्दर हो जाता है और उसके खाने से कफ का नाश होता है।

गुण—

कच्चे कमरख—खट्टे किन्तु कुछ उष्ण होते हैं, बात का नाश करते हैं और पित्त उत्पन्न करते हैं।

पके हुये कमरख—खाने में मधुर और खट्टे होते हैं। इनके खाने से बल उत्पन्न होता है। शरीर पुष्ट होता है और रुचि बढ़ती है।

उपयोग

कमरख का मुरब्बा—एक सेर कमरख को लेकर बांस की पतली तीलियों से छेद डालना चाहिये और उसके बाद उनको चूने के पानी में डाल देना चाहिये। कुछ समय के पश्चात् उनको निकाल कर दूसरे पानी में आग में चढ़ाकर जोश देना चाहिये। इसके बाद उतार कर शकर की चाशनी बना कर, उसी में कमरख डाल देने चाहिये। जब चाशनी गाढ़ी हो जाय तो उनको उतार लेना चाहिये। यह मुरब्बा खाने में बड़ा स्वादिष्ट और रुचिकारक होता है।

कमरख का अचार—कमरख लेकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहिये। इसके बाद, नमक, मिर्च, जीरा, हल्दी, काली मिर्च, इलायची और लौंग पीसकर एक मिट्टी के बरतन में कमरख डाल देना चाहिये और उन पर मसाला पिसा हुआ छोड़ कर मिला देना चाहिये। इसके बाद उस बरतन में तेल छोड़कर रख देना चाहिये। कमरख के टुकड़ों में मसाला और तेल प्रवेश हो जाने पर वे खाने योग्य हो जाते हैं। कुछ लोग बिना तेल के भी कमरख का अचार बनाते हैं।

कमरख की चटनी—कमरख में काली मिर्च, जीरा, पुदीना, लौंग, इलायची और काला नमक मिलाकर पीस डालते हैं। उसके पीस चुकने पर किसी पत्थर की कटोरी आदि में उठा कर उसमें थोड़ी-सी शकर मिला देते हैं। इस प्रकार यह खट-मिट्ठी चटनी बड़ी स्वादिष्ट बन जाती है।

कमरख की अनेक प्रकार की चीज़ें खाने की बनाई जाती हैं, उसका मुरब्बा, अचार, चटनी अथवा खट्टी खटाई, मीठी खटाई, आदि बनाई जाती हैं। ये चीज़ें खाने में बड़ी रुचिकर, स्वादिष्ट तथा गुण वाली होती हैं। इनसे भूख बढ़ती है, खाने में स्वाद आ जाता है और भोजन में रुचि उत्पन्न होती है।

अञ्जीर

अंजीर गर्म देशों में अधिक पैदा होता है। तुर्किस्तान, अरब ईरान, ग्रीस और अफ्रीका के दक्षिण भाग में अंजीर बहुत पैदा होता है। हमारे यहाँ बाजारों में जो अंजीर मिलता है, वह प्रायः अरब से आता है।

अंजीर खाने में अधिक स्वादिष्ट नहीं होता, किन्तु लाभ के लिए बड़ा उपयोगी होता है। कच्चे अंजीर की तरकारी बनाई जाती है और पक्के अञ्जीर का मुरब्बा बनता है। शरीर में रक्त बढ़ाने के लिए बड़ा उत्तम मेवा है। जो लोग शरीर से निर्बल होते हैं अथवा किसी बीमारी अथवा किसी संयोग के कारण शारीरिक शक्ति में निर्बल हो जाते हैं, वे लोग नित्य प्रातःकाल इसका सेवन करते हैं।

गुण—

अञ्जीर—अत्यन्त शीतल और तत्काल रक्त-पित्त का नाश करता है। पित्त की समस्त बीमारियों में तथा शिर की पीड़ा में बहुत लाभ पहुँचाता है। नाक से गिरते हुये रुधिर को तुरंत बन्द कर देता है।

अञ्जीर—भारी और शीतल होता है, खाने में मधुर तथा बात का नाश करता है। रक्त-पित्त का दमन करता है। रुचि को बढ़ाता है। स्वाद को पैदा करता है। पाचक होता है किन्तु श्लेष्म तथा आमबात उत्पन्न करता है।

उपयोग—

शरीर से गर्मी के निकालने तथा रक्त की वृद्धि के लिये—रात के समय पके हुये अंजीरों को छीलकर दो प्यालियों में बराबर-बराबर रख दे और दोनों प्यालियों में बराबर-बराबर शक्कर डाल दे। इनको ओस में रखा रहने दे और प्रातःकाल उनका सेवन करे, ऐसा करने से पन्द्रह दिनों में ही बहुत लाभ होता है।

पुष्टि के लिये—सूखे हुये अंजीर के टुकड़ों को और छिले हुये बादामों को आग पर चढ़ाकर उबाल लेना चाहिये। उसके पश्चात् उसको सुखा कर दानेदार शक्कर, अधपिसी इलायची, केशर, चिरौंजी, पिश्ता और बादाम बराबर-बराबर लेकर आठ दिनों तक गाय के घी में डाल रखना चाहिये। इसके बाद नित्य प्रातःकाल दो तोला तक का सेवन करे। छोटे बालकों की निर्बलता दूर करने के लिये यह बड़ी उपयोगी चीज़ है।

गले और जीभ की सूजन पर—सूखे हुए अञ्जीर लेकर उन का पानी के साथ पहले काढ़ा बना लेना चाहिये उसके बाद उसका लेप करने से गले और जीभ की सूजन का नाश होता है।

पुल्टिस—ताज़े अञ्जीर कूट कर और पानी के साथ उनको पीस लेना चाहिये, इसके बाद उसको कुछ गर्म करके फोड़ा आदि में बाँधने पर बहुत जल्दी आराम होता है।

जामुन

जामुन का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। जिन बगीचों में आम के पेड़ होते हैं वहाँ जामुन के वृक्ष भी होते हैं। जामुन और आम लगभग एक ही मौसम में फलते हैं और बरसात शुरू होने पर दोनों एक ही साथ पकते भी हैं।

जामुन जब कच्ची होती है, तो उसका रंग हरा होता है, और वह जब थोड़ी बहुत पकने लगती है तो उसका रंग लाल हो जाता है। इसके बाद जितनी ही वह पकती जाती है, उतना ही उसमें श्याम वर्ण आता जाता है। बिलकुल पक जाने पर जामुन कोयले की भाँति काली हो जाती है।

कच्ची जामुन खाने के काम में नहीं आती। जब वह थोड़ी थोड़ी पकने लगती है और उसका वर्ण लाल हो जाता है, उसी समय से लोग उसका खाना आरम्भ कर देते हैं। परन्तु इस अवस्था में जामुन के खाने का कोई अधिक अच्छा स्वाद नहीं होता। उसमें उसका गूदा तो खाने के लायक मुलायम हो जा जाता है, किन्तु वह खाने में बहुत खट्टी होती है। पूर्ण रूप से पक जाने पर जामुन खाने में बड़ी स्वादिष्ट और मधुर मालूम होती है।

पकी हुई जामुन खाने के काम में आती है। जामुन की फसल में छोटे और बड़े सभी लोग उसे खाते हैं। निर्बल और सबल अपनी इच्छानुसार उसका प्रयोग करते हैं। जामुन का यह गुण है कि वह किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाती। जामुन को नमक और काली मिर्च के साथ खाने से उसका स्वाद बढ़ जाता है और इसके अतिरिक्त जामुन का पौष्टिक गुण भी अधिक हो जाता।

गुण—

जामुन का फल—यह खाने में मधुर और शीतल होता है। रुचि को बढ़ाता है। मल को रोकता है। बात को बढ़ाता है। कफ और पित्त का नाश करता है। यह भारी और कषेला होता है। खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट होता है।

बड़ी और अच्छी जामुन—खाने में मधुर और कुछ गरम होती है। इससे गले की आवाज़ शुद्ध और तेज़ होती है। खाने में रुचिकारक होती है। मल को स्तम्भ करती है। खाँसी और श्वास को फायदा करती है। श्रम, अतिसार और कफ को मिटाता है।

छोटी जामुन—यह हृदय को लाभ पहुँचाती है। खाने में मधुर होती है। वीर्य को बढ़ाती है। शरीर को पुष्ट करती है। हृदय के रोगों और कंठ की बीमारियों को दूर करती है। मल को रोकती है। कफ और पित्त का नाश करती है।

उपयोग—

पित्त पर—एक तोला जामुन का रस लेकर उसमें एक तोला गुड़ मिला देना चाहिये और उसको आग पर गरम होने के लिये रख देना चाहिये। जब उसमें भाफ उठे तो उसको मुँह में लेना चाहिये। भाफ के पेट में जाने से बड़ी जल्दी फायदा होता है और पित्त शान्त हो जाता है।

गर्भिणी के अतीसार पर—जामुन के फल खिलाने से बहुत लाभ होता है। जामुन की फसल न होने पर जामुन और आम की छाल के साथ धान और जौ का एक-एक तोला उस में डालकर काढ़ा बनाना चाहिये और उसके तैयार होने पर उसको खिलाना चाहिए। इससे तुरन्त फ़ायदा होता है।

प्रमेह पर—किसी प्रकार प्रमेह की बीमारी में और विशेष कर मधुमेह की अवस्था में लगातार पन्द्रह दिनों तक जामुन के फल खाने से बहुत लाभ होता है। यदि जामुन की फसल न हो तो सूखे हुए जामुन के फलों का दो तोला चूर्ण नित्य पानी के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

पेट में बाल या लोहे के अंश चले जाने पर—ऐसी अवस्था में बाल खाजाने वाले को बड़ा कष्ट होता है। किन्तु यदि जामुन खाने को मिल जाँय तो उसका कष्ट दूर हो जाता है।

जामुन का सिरका—यह पेट के अनेक रोगों को फ़ायदा पहुँचता है। विशेषकर गुल्म, अतिसार, विशूचिका के लिए यह बहुत उपयोगी चीज़ है। वैद्यक में इसको पेट की पीड़ा के लिए रामबाण लिखा है। इसके तैयार करने की विधि इस प्रकार है—

बहुत-सी पकी हुई जामुन लेकर उनको हाथ से खूब मल डालना चाहिए और एक साफ़ तथा महीन कपड़ा लेकर किसी पत्थर के बर्तन में छान लेना चाहिये और इस छने हुए रस को साफ़ बोतल में भरकर रख देना चाहिए। कुछ दिनों में, जब इसमें खट्टापन आ जाता है तो सिरका तैयार हो जाता है।

पेट की पीड़ा में—पकी जामुन के रस का शरबत बनाकर पीने से पेट की पीड़ा का तुरन्त नाश होता है।

लसोड़ा

कुछ लोग इसको लभेर भी कहते हैं। आम, इमली और जामुन की भांति लसोड़े का पेड़ भी बहुत बड़ा होता है। इसका फल बहुत छोटा होता है। लसोड़े की दो क़िस्में होती हैं। छोटा और बड़ा लसोड़ा। छोटे लसोड़े का पेड़ भी छोटा होता

है और फल भी। इसी भाँति बड़े लसोड़े का वृक्ष भी बड़ा होता है और फल भी।

उपयोग—

पुष्टई के लिए—लसोड़े का फल शरीर को पुष्ट करने के लिए बहुत प्रसिद्ध है। जो लोग उसके इस गुण की उपेक्षा करते हैं वे ग़लती करते हैं। शरीर को पुष्ट और स्वस्थ बनाने के लिए निम्नलिखित उसका उपयोग किया जाता है—

लसोड़े के फलों को लेकर सुखा डालना चाहिए और सूख जाने पर उसको कूटकर चूर्ण कर लेना चाहिए। इसके बाद, शक्कर की चाशनी बनाकर इसको उसी में छोड़ देना चाहिए और लड्डू बाँध लेना चाहिए।

लसोड़े की तरकारी—कच्चे लसोड़े के फलों को लेकर पानी के साथ उबाल डालना चाहिए। फिर उनकी गुठली निकालकर गूदा अलग कर लेना चाहिये और बटलोही या कड़ाही में थोड़ा-सा घी या तेल छोड़कर, ज़रा-सा हींग या ज़ीरा उसमें छोड़ देना चाहिए, और उसकी महक उठने पर, उस लसोड़े को उसमें छोड़ देना चाहिए और साथ ही हल्दी, धनिया, नमक, मिर्च पीसकर उसमें छोड़ देना चाहिए और भून लेना चाहिए। बस तैयार हो जाने पर उसे उतार लेना चाहिए।

लसोड़े का अचार—लसोड़े के कच्चे फलों को एक सेर लेकर, चार सेर पानी में डालकर उनको धूप में रख देना चाहिए और दस-ग्यारह दिनों के बाद, जब उसमें खटाई आ जाय तब पानी में उसको धो डालना चाहिए इसके बाद, उसको किसी बर्तन में भरकर एक छटाक राई, दो तोला हल्दी, तीन छटाक नमक को पीसकर उसमें मिला देना

चाहिए। फिर उसमें तेल डालकर उसे ढककर रख देना चाहिए। पाँच-छः दिनों के बाद अचार तैयार हो जायगा। यह खाने में बड़ा स्वादिष्ट और रुचिकारक होता है।

काजू

काजू अफ्रिका और हिन्दुस्तान में पैदा होता है। अपने देश में मलावार. गोमांतक और कर्नाटक आदि स्थानों में इसके वृक्ष होते हैं। इसके पेड़ प्रायः जंगल और पहाड़ों में अधिक होते हैं। काजू दो प्रकार का होता है, काला और सफ़ेद।

काजू का फल कोमल होता है और उसके आगे उसमें बीज होते हैं। काजू खाने में स्वादिष्ट होता है परन्तु अधिक खाने से हानि करता है। इसके सूखे फल खाये जाते हैं और उसके सूखे बीजों को शक्कर के पाग में मिलाकर मिठाइयाँ तथा अन्यान्य खाने की चीजें बनाई जाती हैं। इसके बीजों का तेल निकाला जाता है जो अन्यान्य उपयोग के सिवा नावों के नीचे के भाग में लगाया जाता है जिससे उसकी लकड़ी पर पानी का कोई प्रभाव नहीं होता।

गुण—

काजू—खाने में कषेला किन्तु मधुर होता है। कुछ हलका और गर्म होता है। धातु को बढ़ाता है। बात-कफ़ को दूर करता है। गुल्म तथा उदर के रोगों में फायदा करता है। ज्वर, कृमि तथा व्रण में उपयोगी है। मन्दाग्नि का नाश करता है। कुष्ठ और संग्रहणी, बवासीर आदि रोगों को अवश्य दूर करता है।

उपयोग—

पैर की कमज़ोरी में—काजू के बीजों को दूध के साथ पीस कर लेप करने से बड़ा लाभ होता है और कमज़ोरी दूर हो जाती है।

बद को फोड़ने लिए—काजू की कच्ची गरी और तीवर के फल को ठंढे पानी में पीसकर लेप करना चाहिए। इससे बद जल्दी से पक कर फूट जाती है।

सेव और नास्पाती

सेव और नास्पाती, दो मुख़्तलिफ फल हैं। ये फल, ठंढे देशों में अधिक पैदा होते हैं। अपने देश में, काश्मीर में, विलोचिस्तान में इसके वृक्ष पाये जाते हैं। परन्तु काश्मीर के सेव और नास्पाती अच्छी होती हैं।

गुण—

सेव—यह खाने में बड़ा मधुर होता है, बात और पित्त का नाश करता है। शरीर को पुष्ट करता है। कफ को बढ़ाता है। इसकी प्रकृति भारी और शीतल होती है। इसके खाने से रुचि बढ़ती है और शुक्र की वृद्धि होती है।

नास्पाती—यह खाने में बड़ी अच्छी होती है, स्वाद में मीठी होती है और धातु की वृद्धि करती है। खाने में रुचि उत्पन्न करती है। यह अम्लकारक और बात-नाशक होती है और त्रिदोष को शान्त करती है।

उपयोग—

सेव का मुरब्बा—एक सेर पके सेव लेकर पहले उनका टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहिए और फिर उनको कांटे से

छेद डालना चाहिए। इसके बाद एक सेर बूरे की शक्कर में उबालकर किसी बरतन में भरकर रख देना चाहिए और उसका मुँह बन्द कर देना चाहिए। तीसरे दिन बूरे की चाशनी बनाकर उसमें उनको डाल देना चाहिये और ऊपर से केवड़ा छिड़क देना चाहिए। यह मुरब्बा खाने में बड़ा स्वादिष्ट होता है और हृदय तथा मस्तिष्क को बलवान करता है।

कैथा

भारतवर्ष में कैथा का पेड़ भी सभी जगह पाया जाता है। परन्तु दक्षिण तथा गुजरात की ओर यह बहुत अधिक होता है। कैथे का फल, जिसको लोग कैथ या कैथा कहते हैं, बेल की बराबर होता है और कोई-कोई तो उससे भी बड़े होते हैं। इसका छिलका मोटा और बहुत सख्त होता है।

कैथा खाने के काम में आता है। इसका कच्चा फल खटाई में बहुत तीक्ष्ण होता है और खाने में हानिकारक भी होता है। छोटे लड़कों तथा निर्बल स्वास्थ्य के आदमियों को कच्चा कैथा खाने से खाँसी आने लगती है। अधपक्का कैथा की चटनी बनाई जाती है। जब कैथा भलीभांति पक जाता है तो उसकी खटाई की तीक्ष्णता दूर हो जाती है। उसे लोग सूखा भी खाते हैं और कुछ लोग नमक पीस कर, कैथे के साथ खाते हैं। पके कैथे की चटनी बनती है और उसका मुरब्बा भी बनाया जाता है।

गुण

कच्चा कैथा—अत्यन्त खट्टा होता है, कण्डू का नाश करता है, विष को दूर करता है। मल को रोकता है। बात को

बढ़ाता है। इसकी प्रकृति अम्लपूर्ण, कषैलो और सुगंधयुक्त होती है।

पके कैथे—खाने में रुचिकर और खट्टे होते हैं, फीके और ग्राही होते हैं। कण्ठ का शोधन करते हैं। शीतल और दुर्जर होते हैं। श्वास और क्षय रोग को मिटाते हैं। वायु और रक्त-रोग में लाभ करते हैं। कैथा तृषा और त्रिदोष का नाश करता है। हिचकी और ग्लानि को मिटाता है।

कैथे के बीज—हृद्रोग, मस्तक-शूल, विष और विसर्प का नाश करते हैं।

कैथे के बीजों का तेल—इन बीजों का तेल निकाला जाता है, जो फीका, ग्राही और मधुर होता है। पित्त और कफ़ में फायदा करता है। हिचकी और क़ै को मिटाता है। चूहे के विष का नाश करता है।

उपयोग—

पित्त की अधिकता पर—पित्त के अधिक बढ़ जाने पर पके कैथे का गूदा, शक्कर में मिलाकर खाना चाहिए, इससे बहुत लाभ होता है।

चूहे का विष दूर करने के लिए—कैथे के बीजों का तेल लगाने से बहुत शीघ्र फायदा होता है।

हिचकी और श्वास के रोग पर—कैथे का रस शहद और पीपल के साथ खिलाने से तुरन्त लाभ होता है।

अजीर्ण हो जाने पर—कैथे के गूदे में सोंठ, कालीमिर्च और पीपल का चूर्ण, शहद और शक्कर के साथ मिलाकर पीने से अजीर्ण दूर हो जाता है।

वैद्यक में कैथे का, दवाओं में बहुत जगह प्रयोग किया जाता है। वैद्यक में कच्चे कैथे को दस्तों और पेट के दर्द के

लिए तथा पक्के कैथे को गले की सूजन के लिए अत्यन्त उपयोगी माना गया है। यूनानी में भी, इसके फलों को शीतल, पाचक और गले की सूजन के लिए बहुत मुफीद कहा गया है। इसके गूदे का शरबत पीने से किसी प्रकार की भी अरुचि क्यों न हो, तुरन्त दूर होती है।

बेर

भारतवर्ष में बेर के पेड़ सभी जगह होते हैं। उसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं। उनमें जङ्गली बेर, झरबेरी और पेंवदी बेर प्रसिद्ध हैं। सभी प्रकार के बेर खाने के काम में आते हैं। जंगलों में होने वाले जंगली बेर और झरबेरी बहुत छोटे बेर होते हैं। उनमें गूदे का अंश बहुत थोड़ा निकलता है। पेंवदी बेर बहुत बड़ा और खाने में स्वादिष्ट तथा मीठा होता है।

गुण–

साधारण कच्चे बेर—पित्त और कफ को बढ़ाते हैं। खाने में काफ़ी खट्टे और कषेले होते हैं।

पक्का बेर—पित्त और बात का नाश करता है। खाने में स्निग्ध और मधुर होता है। कुछ दस्तावर भी होता है। परिश्रम को दूर करता है। वमन का निवारण करता है। बल को बढ़ाता है। तृषा का नाश करता है। खाने में रुचिकर होता है रक्त-दोष और अतिसार के लिए लाभकारी है।

छोटा बेर—खाने में मधुर और खट्टा होता है। किन्तु पक जाने पर वही बेर स्निग्ध और रुचिकर होता है। कीड़ों को उत्पन्न करता है। किसी प्रकार पित्त और जलन तथा वात का नाश करता है।

बेर का गूदा—खाने में मधुर होता है, बल को बढ़ाता है, खाँसी श्वास, को शान्त करता है। तृषा और वायु को मिटाता है। कै, जलन तथा पित्त के लिए लाभकारी है।

खिन्नी

कुछ लोग खिन्नी को खिरनी भी कहते हैं। इसके वृक्ष गुजरात की ओर बहुत होते हैं। नीम के फलों की भाँति इसके फल छोटे-छोटे होते हैं। खिन्नी खाने में बहुत मीठी होती है और उसमें दूध भी होता है। इसकी प्रकृति गर्म होती है।

खिन्नी खाने के काम में आती है, यह खाने में मधुर और शीतल होती है। इसके पक जाने पर उसका स्वाद खट्टा हो जाता है। वह शरीर के लिए पौष्टिक भी होती है।

गुण—

खिन्नी—शीतल और स्निग्ध होती है। इसके खाने से शरीर में बल की वृद्धि होती है। यह तृषा को मिटाती है। मूर्छा को शान्त करती है। मद और भ्रान्ति का नाश करती है और क्षय तथा त्रिदोष को दूर करती है।

खिन्नी—यह खाने में मीठी होती है, पित्त का नाश करती है। भारी और तृप्तिकारक होती है। शरीर में वीर्य की उत्पत्ति करती है। स्वास्थ्य और शक्ति बढ़ाती है। हृदय को शक्ति देती है। प्रमेह रोग में लाभ करती है।

खिन्नी—यह मधुर और कषेली होती है। इसकी प्रकृति शीतल, और स्निग्ध होती है। खाने में स्वादिष्ट और रुचिकारक होती है। मल को अवरुद्ध करती है। वीर्य को बढ़ाती है।

शरीर को पुष्ट करती है। मांस बढ़ाती है। त्रिदोष को नाश करती है। तृषा, दाह और रक्त-पित्त को शान्त करती है।

करौंदा

करौंदा का वृक्ष पहाड़ी स्थानों में अधिक पाया जाता है। इसके फल छोटे-छोटे और गोल होते हैं। कच्चे होने पर उनका रंग हरा होता है किन्तु पक जाने पर उनका रंग काला हो जाता है।

करौंदा का फल खाने के काम में आता है। कच्चे करौंदे का अचार बहुत अच्छा होता है और स्वास्थ्य के लिए भी उपयोगी होता है। शहरों के बगीचे में जो करौंदे के पेड़ होते हैं वे प्रायः विलायती होते हैं जो वहाँ के बीजों को बोकर पैदा किया जाता है। इसका फल, अपने देश के करौंदों की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है और देखने में भी सुन्दर होता है। इस पर कुछ लालिमा होती है। अचार और चटनी के लिए यह अधिक पसन्द किया जाता है। छोटे और बड़े के लिहाज से करौंदे की दो जातियाँ होती हैं, छोटे को करौंदी और बड़े को करौंदा कहते हैं।

गुण—

करौंदे के कच्चे फल—खाने में खट्टे और भारी होते हैं। तृषा का नाश करते हैं। गर्म और रुचिकारक होते हैं। रक्त-पित्त और कफ को बढ़ाते हैं।

पक्के फल—खाने में मधुर और रुचिकारक होते हैं। यह हलके और पाचक होते हैं। प्यास को शान्त करते हैं। पित्त और बात का शमन करते हैं।

दोनों प्रकार के कच्चे करौंदे—स्वाद में कडुवे होते हैं ये अग्नि को उद्दीप्त करते हैं। भारी और गर्म होते हैं। पित्त को बढ़ाते हैं। मल को रोकते हैं। खट्टे और रुचिकारक होते हैं। रक्त पित्त पैदा करते हैं। कफ़ उत्पन्न करते हैं। एवम् तृषा को शान्त करते हैं।

दोनों प्रकार के पक्के करौंदे—मधुर और रुचिकारी होते हैं। ये हलके, शीतल तथा खाने में उपयोगी होते हैं। पित्त और त्रिदोष का नाश करते हैं। बात को मिटाते हैं।

सूखे करौंदे का गुण पक्के करौंदे के समान होता है।

हरफारेवड़ी

हरफारेवड़ी का वृक्ष साधारण होता है। अंगूर की भाँति इसके पेड़ में फलों के गुच्छे लगते हैं, इसके फलों का अचार बहुत बढ़िया बनाया जाता है। इसका फल खाने में खट्टा होता है और कषेला होने के साथ-साथ सुगन्धदार होता है।

गुण—

हरफारेवड़ी—यह रुधिर के विकारों को नाश करने में बड़ा उपयोगी होता है। बवासीर को शान्त करता है। कफ़ और पित्त का नाश करता है। यह भारी और विशद होने के साथ ही रोचक होता है। यह खाने में रूखा, स्वादिष्ट किन्तु कषेला होता है।

हरफारेवड़ी—यह कफ और पित्त का नाश करता है। किञ्चित् कडुवा होता है। रुचि को बढ़ाता है। हृदय को लाभ पहुँचाता है। यह सुगन्धित और विशद होता है।

हरफारेवड़ी—यह खाने में कषेला रुचिकारक होता है। इसका स्वाद खट्टा, प्रिय तथा कड़ुवा होता है। यह सूखी, विशद और सुगन्धित होता है। इससे बात की वृद्धि होती है। खाने में स्वादिष्ट होता है। कफ और पित्त का नाश करता है। मूत्राश्मरी और अर्शरोग को मिटाता है।

उपयोग—

शरीर पर पित्ती उछलने पर—हरफारेवड़ी के रस में घी तथा कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर और गर्म करके लेप करने से तुरन्त लाभ होता है और उसके द्वारा उत्पन्न हुआ कष्ट शीघ्र शान्त हो जाता है।

बड़हल

बड़हल का पेड़ बड़ा होता है। कर्नाटक और गोमांतक प्रान्तों की ओर यह अधिक पैदा होता है। इसकी मिट्टी एक विशेष प्रकार की होती है, जिसके कारण यह सब जगह नहीं होता और यदि लगाया भी जाता है तो सूख जाता है।

बड़हल के वृक्ष में कातिक में फल आने आरम्भ हो जाते हैं। इसके फल खाये जाते हैं और विशेषकर अन्यान्य खट्टे फलों की भांति, खटाई के लिए काम में लाये जाते हैं। पके हुए बड़हलों का रायता और अचार बनाया जाता है जो खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट और लाभकारी होता है।

गुण—

कच्चा बड़हल—गर्म और भारी होता है। यह खाने में खट्टा और मधुर होता है किन्तु रुधिर के विकारों को उत्पन्न करता है। नेत्रों को नुक़सान पहुंचाता है। वीर्य को हानि करता है। अग्नि को मन्द करता है।

पक्का बड़हल—खाने में मधुर किन्तु खट्टा होता है। बात और पित्त का नाश करता है। कफ़ उत्पन्न करता है। अग्नि को उद्दीप्त करता है। रुचि को बढ़ाता है। वीर्य की वृद्धि करता है।

बड़हल—भारी और विष्टम्भकारी होता है। यह खाने में स्वादिष्ट और खट्टा होता है। रक्त-पित्त उत्पन्न करता है। कफ़ को बढ़ाता है। बात का नाश करता है। शुक्र तथा अग्नि के लिए नुक़सान पहुँचाता है।

वैद्यों और हकीमों ने बड़हल का रस, प्रसूता स्त्रियों के लिए उपयोगी और लाभकर प्रमाणित किया है।

तेंदू का फल

तेंदू का पेड़ बहुत बड़ा होता है और उसमें आँवले के बराबर फल लगते हैं। ये फल खाने के काम में आते हैं। उत्तरी भारतवर्ष में उसको खाने के अतिरिक्त कितनी ही दवाओं की जगह काम में लाते हैं। तेंदू के फल के रस को गर्म करके वे लोग घाव पर लगाते हैं, जिससे घाव बहुत शीघ्र अच्छा होता है। ग़रीब आदमी उसके फलों को खाते हैं और उसके बीजों को संभालकर रखते हैं। जब कभी किसी को अधिक दस्त लगते हैं, तो इसके बीजों को वे लोग काम में लाते हैं।

अंगरेज़ी डाक्टरों ने भी तेंदू के गुणों को बहुत उपयोगी और काम के योग्य माना है। इसके फलों को हाथ से मसल-कर रस को निचोड़ लेते हैं, उसके बाद उसको उबाल लेते हैं जिससे इसका सत् तैयार हो जाता है। इसका रंग कुछ भूरा मिश्रित लाल होता है। यह सत् पानी में डालते ही तुरन्त

उसमें मिश्रित हो जाता है। तेंदू का यह सत् दस्तों और पुराने शूल के लिए बहुत मुफीद होता है। यदि आदमी कहीं से गिर पड़ा हो और चोट खा गया हो अथवा किसी प्रकार के आघात से उसके कहीं पर छिल गया हो तो तेंदू के फलों को पीसकर लेप करने से अधिक कष्ट नहीं होता और न उस जगह पर सूजन ही होती है।

तेंदू का सत् बड़ा उपयोगी होता है, उसको बनाते समय इस बात का खूब ध्यान रखना चाहिए कि उसके लिए लोहे का कोई बरतन काम में न लाया जाय। यदि सत् के तैयार करने में कोई ख़राबी न हो तो तैयार होने पर उसका रंग लाख को भाँति होता है। तेंदू के फलों के बीजों का तेल निकाला जाता है, वह कितनी ही बीमारियों में काम आता है।

वैद्यक शास्त्र में तेंदू के कच्चे फलों को बात और पित्त के लिए अत्यन्त उपयोगी माना गया है। तेंदू के फलों का सत् पुरानी संग्रहणी के लिए रामबाण औषधि है।

गुण—

तेंदू का कच्चा फल—यह स्निग्ध और कषेला होता है, मल को रोकता है और अरुचि उत्पन्न करता है। इसकी प्रकृति शीतल और रूखी होती है। इसके खाने से बात उत्पन्न होता है।

तेंदू का कच्चा फल—कड़ुवा और हलका होता है। यह बात की वृद्धि करता है और मल को रोकता है। यह कषेला और ग्राही होता है। खाने में अरुचि का उत्पादन करता है।

तेंदू का पक्का फल—पित्त और प्रमेह का नाश करता है, रुधिर के विकारों को शुद्ध करता है। खाने में स्वादिष्ट होता है। यह बात को मिटाता है स्निग्ध तथा दुर्जर होता है।

उपयोग—

श्वास के रोग में—तेंदू के फलों का सूखा छिलका चिलम में भर कर पीने से श्वास के रोगियों को लाभ होता है।

गूलर

आम, इमली और जामुन के भाँति गूलर का वृक्ष भी बहुत बड़ा होता है। इसके फल, जिसको लोग गूलर कहते हैं, अंजीर के बनावट के होते हैं। गूलर के पेड़ सभी जगह पाये जाते हैं। देहातों में इसके पेड़ अधिक होते हैं।

प्रायः देखा जाता है कि गूलर का पेड़ जहाँ पर होता है, वहाँ कोई न कोई जलाशय अवश्य होता है। देहातों में, जो पेड़ बस्ती के भीतर होते हैं, प्रायः वहाँ पर, उस पेड़ में नीचे या निकट लोग कुआ या तालाब खोदते हैं। इसका कारण यह है कि गूलर के निकट के जलाशय का पानी अत्यन्त गुणकारी होता है।

गूलर के वृक्ष में बहुत से फल लगते हैं। वे कच्चे और पक्के—सभी तरह से खाये जाते हैं। कच्चे गूलरों की तरकारी बनाई जाती है और पके गूलर खाये जाते हैं। ये खाने में मधुर और स्वादिष्ट होते हैं। कुछ पेड़ों के गूलर बहुत बड़े-बड़े होते हैं और उनका फल भी मीठा तथा खाने के योग्य होता है।

गूलर का फल कच्ची अवस्था में हरे रंग का होता है और पक जाने पर उसका रंग लाल अथवा कत्थई रंग का हो जाता है। गूलरों के पक जाने पर उनमें छोटे-छोटे कीड़े पैदा हो जाते हैं, ये कीड़े भुनगे कहलाते हैं। इनके पैदा हो जाने से गूलर खाने में खराब नहीं होते। जो लोग गूलर खाते हैं, वे

पक्के गूलरों को बीच से फाड़कर उन भुनगों को उड़ा देते हैं अथवा स्वयं उड़ जाते हैं, इसके बाद, लोग उनको खा जाते हैं। कुछ लोग तो उनके भुनगों को बिना निकाले ही खा जाते हैं, परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं होता। देहातों में ग़रीब लोग पेट-भर कर गूलर खाते हैं।

गुण—

कच्चे गूलर—स्तम्भक और फीके होते हैं, ये खाने में गुणकारी होते हैं। तृषा को मिटाते हैं। कफ़ और पित्त का नाश करते हैं और रक्त-विकार को दूर करते हैं।

पके गूलर—खाने में मधुर होते हैं किन्तु कृमि उत्पन्न करते हैं। इनकी प्रकृति जड़ और रुचिकर होती है। ये शीतल तथा कफ़ कारक होते हैं। रक्त दोष, पित्त और दाह को मिटाते हैं। क्षुधा को शान्त करते हैं। तृषा और श्रम को दूर करते हैं। प्रमेह, शोष और मूर्छा के रोग में लाभकारी हैं।

पुराने गूलर—फीके और खट्टे होते हैं। ये खाने में रुचिकर और अग्नि को उद्दीप्त करते हैं। इनके खाने से मांस की वृद्धि होती है और रक्त-दोष उत्पन्न होता है।

साधारण गूलर—मीठे और शीतल होते हैं। ये पित्त, तृषा और मोह को उत्पन्न करते हैं और वमन, रक्तस्राव एवम् प्रदर का नाश करते हैं।

उपयोग—

रक्त-पित्त पर—पके हुए गूलरों को गुड़ या शहद के साथ खाना चाहिए। इससे रक्त-पित्त नाश होता है। अथवा इस दोष जनित जो विकार उत्पन्न होता है, वह शान्त हो जाता है।

शीतला की गर्मी दूर करने के लिए—जिन बच्चों को शीतला निकलती है उनके शरीरों से बहुत दिनों तक

उनकी गर्मी नहीं जाती, ऐसी अवस्था में, गूलरों का रस निकाल कर और उसमें मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे बड़ा लाभ होता है।

बेल

हमारे देश में बेल सभी जगह होता है। इसका पेड़ बहुत बड़ा होता है। बेल का फल भी बेल ही कहलाता है और वह कैथे के बराबर होता है। कुछ दरख्तों के फल बहुत बड़े होते हैं। किन्तु बड़े फल देने वाले वृक्ष प्रायः बगीचों में हुआ करते हैं।

कच्चे बेल का शाक बनाया जाता है और कुछ लोग इसका अचार और मुरब्बा भी बनाते हैं। पके हुए बेल में शहद की तरह गाढ़ा-गाढ़ा रस होता है। यह रस खाने में बहुत मीठा और गर्म होता है। यह खाने के काम में आता है। देहातों में ग़रीब आदमी इसे बहुत खाते हैं।

कच्चा बेल बिना पका हुआ खाने के योग्य नहीं होता। इस-लिए बहुत से आदमी उसको पकाकर खाते हैं। बेल के ऊपर का छिलका बहुत कड़ा होता है। आग में वह जब पकाया जाता है तो उसमें बड़े ज़ोर की आवाज़ होती है। आवाज़ कर के उसका छिलका चिटख़ जाता है।

बेल बहुत-सी बीमारियों में काम आता है और कभी-कभी पके हुए बेल का सूखा गूदा मिलना ही मुश्किल हो जाता है। दस्तों और अतिसार की बीमारी में यह बहुत काम देता है। इसलिए देहातों में लोग पके हुए बेल लाकर अपने घरों में रख लेते हैं और जब कभी उसकी आवश्यकता होती है तो उसका उपयोग करते हैं।

देहातों में दवाख़ाने, औषधालय और अस्पताल नहीं होते। और न वहाँ पर अच्छे वैद्य, हकीम और डाक्टर ही होते हैं। वहाँ कुछ लोग बीमारियों के सम्बन्ध में फूल, फल, पत्तियों और जड़ों का उपयोग करते हैं। इसी आधार पर देहातों में बेल खाने के सिवा दवाओं में भी बहुत काम आता है। वहाँ पर प्रायः प्रत्येक गृहस्थ और बाल-बच्चेदार परिवार में बेल के बहुत पुराने फल रक्खे रहते हैं। उन परिवारों के लोग उनको बहुत संभाल कर रखते भी हैं।

गुण—

बेल—यह खाने में मधुर और लघु होता है। त्रिदोष का नाश करता है। क़ै और शूल में फ़ायदा करता है। कफ़ और वायु का नाश करता है। पित्त का दमन करता है और मूत्र-कृच्छ्र में लाभकारी होता है।

कच्चे बेल—स्निग्ध और ग्राही होते हैं। अग्नि को तेज़ करते हैं। प्रकृति में गुरु और पाचक होते हैं। स्वाद में कड़वे और फीके होते हैं। इनकी तासीर गर्म होती है। शूल और आमबात में फ़ायदा करते हैं। संग्रहणी और कफ़ातिसार को नाश करते हैं।

पक्के बेल—यह जलन पैदा करते हैं। खाने में मीठे किन्तु कुछ फीके होते हैं। इनकी प्रकृति तीक्ष्ण और गर्म होती है। ये ग्राही और कड़ुवे होते हैं। बात को उत्पन्न करते हैं और अग्नि को मन्द करते हैं।

पुराने बेल—मधुर और फीके होते हैं। ये तीक्ष्ण, गर्म और जड़ होते हैं। खाने में पाचक होते हैं। अग्नि का उद्दीपन करते हैं। कफ का नाश करते हैं और वायु को शान्त करते हैं।

उपयोग—

बहरेपन पर—बेल के गूदे को गो के मूत्र में पीस डालना चाहिये और फिर उसको छानकर उसमें थोड़ा-सा तेल मिला लेना चाहिये। इसके पश्चात् उसे थोड़ा-सा गुनगुना करके कानों में डालना चाहिये। इससे कान का बहरापन दूर होता है।

गला दुखने पर—प्रायः गले में एक प्रकार का दर्द-सा होने लगता है, किन्तु उसका कोई कारण नहीं मालूम होता। ऐसे कष्ट प्रायः लोगों को सहने पड़ते हैं। इसके लिए पके बेल का गूदा खाने से बड़ा लाभ होता है।

रक्तातिसार पर—बालक से लेकर बुड्ढों तक जब किसी को रक्त के दस्त आने लगते हैं तो उसमें बेल बड़ा उपयोगी होता है। सूखे हुए बेल के गूदे को पहले चूर्ण कर डालना चाहिए। और फिर उसमें थोड़ा-सा गुड़ मिला कर खाना चाहिए। अवश्य लाभ होता है।

सब प्रकार के अतिसार पर—कच्चे बेल का गूदा और आम की गुठली को कूटकर पहले उसका काढ़ा बना लेना चाहिये फिर उसमें शक्कर और शहद मिलाकर खाना चाहिए। निश्चय फ़ायदा होता है।

मुँह आने पर—बेल को तोड़ कर उसके गूदे को पानी में उबाल डालना चाहिये और उसके जल से कुल्ला करना चाहिए।

बच्चों की संग्रहणी पर—बेल के गूदा और सोंठ पीस कर चूर्ण कर लेना चाहिये, उसके बाद थोड़ा-सा गुड़ मिलाकर खिलाना चाहिये।

धातु की पुष्टि के लिए—बेल के गूदे का अर्क़ निकाल कर पीने से बड़ा लाभ होता है और यदि कुछ दिनों तक लगातार

उसका सेवन किया जाय तो धातु के लिए बड़ा गुणकारी होता है।

विशूचिका पर—बेल, सोंठ और कायफल का काढ़ा बना कर पीने से विशूचिका-रोग दूर होता है। बेल और सोंठ का भी यदि काढ़ा बना कर पिलाया जाय, तो भी लाभ होता है।

आँवला

आँवले के वृक्ष हमारे देश में बहुत अधिक हैं। आँवले में इतने गुण हैं और वह इतना अधिक उपयोगी है कि इसके सम्बन्ध में यहाँ पर पर्याप्त रूप से लिखना बहुत कठिन है। आँवला में जो स्वास्थ्य है जो आरोग्य शक्ति है और शरीर के समस्त रोगों को दूर करने के लिए उसमें जो शक्ति तथा गुण है रोगों को दूर करने के लिए उसमें जो शक्ति तथा गुण है वह किसी भी दूसरे फल में नहीं है। इसीलिए आर्यों के आरोग्य शास्त्र आयुर्वेद में उसको ऊँचा स्थान दिया गया है।

आँवलों की शक्ति और गुण को न केवल हमारे पूर्वजों ने स्वीकार किया है, उसका गुण, उसकी उपयोगिता यूनानी और डाक्टरी में भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार की गई है। यहाँ पर आँवलों के गुण और उसके उपयोग संक्षेप में देने की चेष्टा की जायगी जिससे सर्वसाधारण उससे परिचित होकर लाभ उठा सकें।

आँवले की दो जातियाँ होती हैं, सफेद आँवला और जंगली आँवला। प्रत्येक आँवला अत्यन्त उपयोगी और लाभ-कारक होता है। आयुर्वेद में तीन फलों को मिलाकर त्रिफला की व्यवस्था की गई है और उस त्रिफला की सहस्र मुख से

प्रशंसा की गई है, त्रिफला के तीन फलों में आँवला भी एक है जो उन दोनों की अपेक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

गुण—

आँवला—खट्टा और तीखा होता है, खाने में मधुर और फीका जान पड़ता है। आँवला केश्य और भग्नसंधानकारक होता है। इससे वीर्य की वृद्धि होती है। नेत्रों को जीवन-शक्ति प्राप्त होता है और उनके अनेक रोग नष्ट होते हैं। आँवलों की मालिश करने से शरीर में कान्ति उत्पन्न होती है। यह पित्त का नाश करता है। कफ को दूर करता है। प्रमेह को अच्छा करता है। विष तथा त्रिदोष का नाशक है।

कच्चा और पक्का आँवला—खाने में मीठा और खट्टा होता है, आँवले की प्रकृति फीकी और शीतल होती है। यह जरा अवस्था का नाश करता है और शरीर में यौवन का नवाविर्भाव करता है। समस्त व्याधियों को दूर करता है। सभी प्रकार की प्रकृति वाले मनुष्यों के लिए हितकारी है। इसके खाने से अरुचि का नाश होता है, मल साफ़ होता है और मलाशय शुद्ध होता है। यह रक्त-पित्त, प्रमेह, ज्वर को नाश करता है। विष को मारता है। सूजन को मिटाता है। तृषा को शान्त करता है। सैकड़ों-सहस्रों बीमारियों को दूर करने में रामबाण की भांति काम करता है। प्रत्येक शरीर को स्वास्थ्य पहुँचाने के लिए अमृत के समान है

इस प्रकार का आँवला—बालकों और युवकों को यौवन प्रदान करता है, वृद्धों को युवक बनाता है। वार्द्धक्य का नाश करता है। जल को शुद्ध करता है। जिन कुओं के पानी में दुर्गन्धि आने लगती है, उनमें आँवले छोड़ने से उनकी दुर्गन्धि नष्ट हो जाती है।

उपयोग—

अरुचि पर—आँवलों को उबालकर पीसे और फिर उसमें जीरा, कालीमिर्च, पीपल, सोंठ, धनिया, दालचीनी, सेंधा नमक, संचल हर्रे, और सफ़ेद नमक पीसकर मिलावे। इसके उपरान्त उसकी गोलियाँ बना ले। इन गोलियों के खाने से अरुचि का नाश होता है। भूख बढ़ती है और मुख शुद्ध होता है।

खुजली पर—सूखे आँवलों को पीस डाले और उसके चूर्ण को तेल में मिलाकर शरीर में लगाना चाहिए, इससे खुजली मिट जाती है और रक्त शुद्ध होता है।

स्वर के बिगड़ने पर—सूखे आँवलों को पीसकर गाय के दूध के साथ खाने से बिगड़ा हुआ स्वर शुद्ध और तीव्र होता है। अधिक उपयोग करने पर आवाज़ में मिठास आती है। गला साफ़ होता है।

सभी प्रकार के ज्वर में—सूखे हुए आँवले, चित्रक की जड़, हर्र, पीपल और सेंधा नमक बराबर-बराबर लेकर चूर्ण कर डालना चाहिए और इस चूर्ण का सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर दूर हो जाते हैं।

दूसरी विधि—सूखे आँवले, चित्रक की जड़, छोटी हर्रे और पीपल का काढ़ा बनाकर पिलाने से ज्वर का आना बन्द हो जाता है।

शरीर पुष्ट करने के लिए—एक सेर आँवलों को लेकर उनको गुठली तक चारों ओर से छेद डालना चाहिए, इसके बाद चूने के पानी में छोड़ दे। फिर दो सेर पानी के उबलने पर उनमें इन आँवलों को डाल दे और उबलने दे। इसके पीछे उनको निकालकर और कपड़े से उनका पानी पोंछकर शक्कर

या मिश्री की चाशनी में डाल दे। यह मुरब्बा कई-कई वर्ष चलता है। आँवले का मुरब्बा पित्त को नष्ट करने और पुष्टई के लिए सुधा के समान है।

अशुद्ध अभ्रक खा लेने पर—बिना शुद्ध किया हुआ अभ्रक खा लेने से जो भयंकर विकार उत्पन्न होते हैं उनको शांत करने के लिए आँवलों का रस पीना चाहिये अथवा आँवलों को पानी में लगाकर तबतक प्रयोग करना चाहिए जबतक उसके समस्त विकार पूर्ण रूप से शान्त न हो जाँय।

कै और श्वास में—आँवलों के रस में पिसी हुई पीपल और शहद मिलाकर खिलाने से तुरन्त लाभ होता है।

बात-रक्त पर—सूखे हुए आँवलों को अंडी के तेल में तलकर पीस डाले, उसके चूर्ण को शक्कर के साथ सुबह-शाम पानी के द्वारा खाने से बड़ा लाभ होता है और बात-रक्त नष्ट हो जाता है।

वमन पर यदि खाली कै होती हो तो सूखे आँवलों के चूर्ण में चन्दन का चूर्ण मिलाकर शहद के साथ खाने से बहुत शीघ्र वमन होना रुक जाता है। यदि न रुके तो यह कई बार थोड़ी-थोड़ी देर में इसको खिलाना चाहिए।

बुढ़ापे को दूर करने के लिए—सूखे हुए आँवलों को पानी में खूब महीन पीस डाले और उसको सिर से लेकर समस्त शरीर में लगावे और कुछ समय के उपरान्त ठंडे पानी से नहा डाले इससे शरीर में झुर्रियाँ नहीं पड़तीं और न बाल सफ़ेद होते हैं। अधिक दिनों तक इसका उपयोग करने से बदन में पड़ी हुई झुर्रियाँ जाती रहती हैं और सफ़ेद बाल काले हो जाते हैं।

आँखों की गर्मी दूर करने के लिए—सूखे हुए आँवले और थोड़े से तिलों को लेकर शाम को पानी में भिगो दे और प्रातः-काल उनको पीसकर आँखों में लगावे और थोड़ी देर में स्नान कर डाले। इससे नेत्रों की जलन मिट जाती है और हर समय उनमें ठण्ढक रहती है। अधिक दिनों तक उपयोग करने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।

दूसरी विधि—आँवला, हर्र, बहेड़ा बराबर-बराबर लेकर सायंकाल उनको पानी में भिगो दे और प्रातःकाल उठते ही पहले आँखों को उसके पानी से खूब छींटे मार-मार कर धोवे। इससे आँखों की जलन तथा गर्मी शान्त हो जाती है। त्रिफला का चूर्ण घी में मिलाकर खाने से भी आँखों की अनेक खरा-बियां नष्ट होती हैं और उनकी शक्ति बढ़ती है।

पित्त दूर करने के लिए—सूखे हुए आंवलों को पीसकर और उस चूर्ण में घी तथा शक्कर मिलाकर खाने से पित्त शान्त होता है, चित्त प्रसन्न होता है और बदन में स्फूर्ति उत्पन्न होती है।

मुख सूखने पर—आँवलों और अंगूरों को पीसकर और उसकी गोलियाँ बनाकर मुख में रखने से मुख का सूखना बन्द हो जाता है। और मुख से लेकर तालू तक शीतलता उत्पन्न हो जाती है।

ज्वर के बाद अरुचि होने पर—सूखे आँवले और अंगूर पीसकर शक्कर मिलाकर उनका कल्क बनाले, उसके खाने से अरुचि का नाश होता है। मुख शुद्ध होता है और स्वाद अच्छा हो जाता है।

मूत्रकृच्छ्र अथवा गर्मी में—आँवलों के रस में गन्ने का रस मिलाकर पीने से लाभ होता है।

नाक से खून गिरने पर—सूखे हुए आँवलों को घी में तल कर पीस डाले और उसके बाद उसको मस्तक पर लेप करने से नाक से गिरता हुआ ख़ून तुरन्त बन्द होता है।

योनि में दाह होने पर—आँवलों के रस में शक्कर या मिश्री मिलाकर पिलाने से योनि की दाह शान्त होती है।

प्रमेह में—पाव-भर आँवलों के रस में मट्ठा मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। लगातार सेवन करने से प्रमेह अच्छा होता है।

शरीर की कान्ति बढ़ाने के लिए—सूखे हुए आँवलों और सफेद तिलों को पीसकर शरीर में नित्य मालिश करे और उसके कुछ देर में गर्म पानी के साथ स्नान कर डाले, कुछ दिनों तक इसका उपयोग करने से शरीर की शोभा बढ़ती है और कान्ति उत्पन्न होती है।

बदन में तेज उत्पन्न करने के लिये—आँवलों और असगंध का चूर्ण बराबर-बराबर लेकर घी और शहद के साथ खाने से बड़ा लाभ होता है और लगातार इसका सेवन करने से बदन में तेज उत्पन्न होता है।

मस्तक की पीड़ा में—आँवलों का चूर्ण घी और शक्कर के साथ प्रातःकाल खाने से और ऊपर से गाय का दूध पी लेने से किसी प्रकार की मस्तक की पीड़ा शान्त होती है।

पित्त जनित शूल पर—सूखे आँवलों का चूर्ण करके शहद के साथ खिलाने से आराम होता है।

मूर्छा पर—आँवलों का रस निकाल कर उसमें घी मिलाकर पिलाने से मूर्छा जाती रहती है।

रक्त-पित्त पर—सूखे आँवलों का चूर्ण शक्कर मिलाकर घी के साथ खिलाना चाहिए अथवा आँवलों का मुरब्बा खिलाना चाहिए। इससे रक्तपित्त शान्त होता है।

रक्तातिसार पर—आँवलों के रस को शहद, घी और दूध मिलाकर खिलाना चाहिए। रक्तातिसार दूर होता है।

अम्लपित्त पर—एक तोला सूखे आँवलों को लेकर रात के समय पानी में भिगोदे। प्रातःकाल उसमें तीन माशा सोंठ और एक माशा जीरा मिलाकर महीन पीस डाले। इसके बाद उसकी गोलियां बनाले और उसकी एक गोली, दो तोला मिश्री के साथ खाकर ऊपर से थोड़ा-सा दूध पीले।

बालकों के अतिसार पर—सूखे आँवले, चित्रक, छोटी हर्र, पीपल और संचल नमक का चूर्ण करके प्रातःकाल और रात को सोते समय गर्म पानी के साथ, बालक की अवस्था के अनुसार खिलाना चाहिए, इससे उसका अतिसार अच्छा हो जायगा।

पित्त के विकारों पर—कलई के बर्तन में एक तोला सूखा आँवला रात को भिगो दे। प्रातःकाल उसे पीसकर गाय के दूध के साथ पिलाना चाहिए।

पाण्डु रोग पर—सूखे आँवलों, हल्दी और गेरू को महीन-महीन पीसकर जिससे वह काजल की भांति हो जाय, इसके बाद उसका अंजन करने से पाण्डु रोग नष्ट होता है।

तीसरा अध्याय

शाक-फल

कुम्हड़ा

घरों के बाहर, कुम्हड़ा सर्वत्र बोया जाता है, इसकी बेल होती है। और बेल में ही इसके फल लगते हैं जो बहुत बड़े-बड़े होते हैं। इसके फलों का रंग नीला होता है। जब यह पक जाता है, तब इसके ऊपर श्वेत रंग की धूल-सी जम जाती है।

गुण—

कुम्हड़े को कुछ लोग पेठा भी कहते हैं। यह जीर्ण शरीर को सबल बनाता है। वीर्य को उत्पन्न करता है। खाने में स्वादिष्ट होता है। अरुचि को दूर करता है। शरीर में बल बढ़ाता है। पित्त का नाश करता है।

कुम्हड़ा, पित्त का नाश करता है। रक्त-पित्त के रोगों में लाभ पहुँचाता है। तृषा का निवारण करता है। वात-पित्त को शान्त करता है। बस्ति का शोधन करता है। स्वादुपाकी किन्तु भारी होता है।

कुम्हड़ा शरीर को पुष्ट करता है, वीर्य को बढ़ाता है और धातु को गाढ़ा करता है। प्रकृति में शीतल, भारी और रूखा होता है। हृदय के शक्ति पहुँचाता है। कफ़ उत्पन्न करता है।

यह मूत्राघात के रोग को लाभ करता है। प्रमेह को शान्त करता है। मूत्रकृच्छ और पथरी को दूर करता है। तृषा के द्वारा उत्पन्न हुए कष्ट को दूर करता है। शुक्र के प्रत्येक विकार में यह अत्यन्त उपयोगी है।

कच्चा कुम्हड़ा, पित्त का नाश करने लिए विशेष रूप से उपयोगी है। मध्यम अवस्था का कुम्हड़ा कफ को शान्त करता है। पका हुआ कुम्हड़ा, हलका, गर्म और क्षार होता है। इससे पाचन-शक्ति उद्दीप्त होती है। यह त्रिदोष-नाशक होता है। हृदय के रोगियों को विशेष रूप से उपयोगी है। कुछ शीतल, हलका और स्वादिष्ट होता है।

कच्चा कुम्हड़ा--अत्यन्त शीतल, दोषकारक और पित्त उत्पन्न करने वाला है।

उपयोग–

कुम्हड़े या पेठे का उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है, उसकी तरकारी बनाई जाती है, पेठे के द्वारा बरियाँ बनाई जाती हैं। इसका मुरब्बा अत्यन्त स्वादिष्ट और शक्तिवर्द्धक होता है। पेठे की जो मिठाई बनती है, वह स्वादिष्ट होने के साथ-साथ, शरीर को शीतलता पहुंचाने वाली होती है, इसीलिए लोग गर्मी के दिनों में पेठे की मिठाई खाकर सुबह के समय पानी पिया करते हैं। कुम्हड़ा बड़ा उपयोगी होता है।

काशीफल

काशीफल, रामकोला, सीताफल, लाल पेठा, और गोल कद्दू आदि इसके अनेक नाम हैं। इसके पेड़ की भी बेल होती है। इसका फल बड़ा और कच्ची अवस्था में हरा होता है किन्तु पक जाने पर हल्का लाल वर्ण हो जाता है।

गुण—

काशीफल—पाचन-शक्ति को निर्बल करता है। पित्त को उत्पन्न करता है। कफ़ का नाश करता है, और बात को बढ़ाता है। खाने में स्वादिष्ट होता है।

काशीफल—यह खाने में हल्का किन्तु मल को अवरुद्ध करता है। प्रकृति में शीतल होता है। रक्त-पित्त का नाश करता है। कफ़ और बात को शान्त करता है। क्षारयुक्त किन्तु भारी होता है।

उपयोग—

इसकी तरकारी खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है। कच्ची रसोई और पक्की रसोई, दोनों में इसका प्रयोग किया जाता है। तरकारी के अतिरिक्त इसका रायता भी बनाया जाता है जो मट्ठे या दही के साथ बनने के कारण बड़ा ज़ायकेदार हो जाता है। खाने के शौक़ीन लोग, इसकी पकौड़ी भी बनाते हैं जो बड़ी रुचिपूर्ण होती है।

पके हुए काशीफल का हलुवा बनाया जाता है। वह शरीर के लिए स्वास्थ्य वर्द्धक और ज़ायकेदार होता है। पहले उसको दूध के साथ उबालते हैं जब वह गल जाता है और दूध पच जाता है तो फिर घी के साथ भूनकर शक्कर मिला देते हैं। यह हलुवा बड़ा स्वादिष्ट होता है।

लौकी

लौकी का पेड़ भी बेलदार होता है। लौकी सर्वत्र पैदा होती है। गृहस्थ लोग अपने घरों में इसको बो देते हैं, जिससे उसकी बेल पैदा होकर दीवारों, छप्परों और छतों पर चढ़

जाती है और उससे बहुत से इसके फल होते हैं जो उनकी तरकारी के काम में आते हैं, इसकी दो किस्में होती हैं, मीठी और कड़ुवी।

गुण—

मीठी लौकी—पित्त और कफ़ का नाश करती है। हृदय को लाभकारी है। वीर्य की वृद्धि करती है, खाने में रुचिकारक होती है। शरीर को पुष्ट करती है।

मीठी लौकी—खाने में मधुर और स्निग्ध होती है। पित्त का नाश करती है। शरीर में बल तथा स्वास्थ्य उत्पन्न करती है। यह अत्यन्त पाचक और पथ्य होती है।

कड़ुवी लौकी—खाने में कड़ुवी और तीक्ष्ण होती है। श्वास के रोग में लाभ करती है। बात को शान्त करती है। खाँसी को आराम पहुँचाती है। किसी प्रकार की सूजन, फोड़ा और विष तथा शूल को शान्त करती है। प्रकृति में शीतल और हृदय के लिए उपकारी है।

उपयोग—

लौकी का उपयोग तरकारी या रायता बनाने में होता है। यह हल्की, पाचक और दोषों से रहित होती है, इसलिए निर्बल या किसी बीमार, आदमी को लौकी का साग या उसकी तरकारी दी जाती है।

ककड़ी

ककड़ी कई प्रकार की होती है किन्तु उनमें दो प्रधान हैं, मीठी और कड़ुवी। इसके सिवा उसके कई भेद होते हैं। सभी प्रकार की ककड़ियों में मीठी ककड़ी जो गर्मी की ऋतु में पैदा होती है सबसे उत्तम होती है। कड़ुवी ककड़ी भी खाने के

काम में आती है किन्तु उसके बीज कड़ुवे होने के कारण नहीं खाये जाते हैं।

गुण—

कच्ची ककड़ी—शीतल और रूखी होती है। मल को रोकती है, खाने में मधुर और भारी होती है, पित्त को दूर करती है, अत्यन्त स्वादिष्ट होती है। मूत्र रोग का नाश करती है और सन्ताप तथा मूर्च्छा को शान्त करती है।

पक्की ककड़ी—गर्म और अग्निवर्द्धक होती है। पित्त को उत्तेजना देती है। वमन को दूर करती है, तृषा को शान्त करती है, और क्लान्ति को मिटाती है। खाने में स्वादिष्ट होती है।

ककड़ी—मधुर और पित्त की नाशक होती है। खाने से तृप्ति होती है। अधिक खाने से बात को उत्पन्न करती है। मल को रोकती है। बादी और भारी होती है। बात ज्वर उत्पन्न करती है। कफ को बढ़ाती है। ताप को नाश करती है। पित्त, मूर्च्छा और मूत्रकृच्छ्र रोग को दूर करती है।

कोमल ककड़ी—हल्की और खाने में सुरुचिपूर्ण होती है। बार-बार मूत्र उत्पन्न करती है। अत्यन्त शीतल होती है। रक्त-पित्त, मूत्रकृच्छ्र और रुधिर के विकारों को दूर करती है।

तोड़ने के बाद पकी हुई ककड़ी—जो ककड़ी, उसके पेड़ से तोड़कर रख ली जाती है और रखी हुई पक जाती है वह गर्म तथा पित्त उत्पन्न करने वाली होती है। कफ और बात को नष्ट करती है।

जंगली ककड़ी—गर्म और खाने में तिक्त होती है। पाक में कटु किन्तु कफ और कृमि को नाश करती है।

चीनी ककड़ी—खाने में शीतल और मधुर होती है, रुचि उत्पन्न करती है। कफ को बढ़ाती है, पित्त को शान्त करती है। दाह और शोष को दूर करती है।

सभी प्रकार की ककड़ी—भारी कठिनाई से पचने वाली होती है। बात-रक्त को बढ़ाती है और मन्दाग्नि को उत्पन्न करती है। जो ककड़ियाँ वर्षा और शरद् ऋतु में उत्पन्न होती हैं, उनके खाने से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। हेमन्त ऋतु में जो ककड़ी उत्पन्न होती है, वह रुचिकारक और लाभकारी होती है वह पित्त का नाश करती है और खाने के योग्य होती है। जो ककड़ी भलीभाँति पक जाती है, वह खाने में मधुर और कफनाशक होती है।

उपयोग—

ककड़ी, कच्ची और पक्की, सभी प्रकार खाई जाती है। अन्यान्य शाक-फलों की भाँति उसको पकाकर खाने की आवश्यकता नहीं होती, बिना पकाये भी बड़ी रुचि और स्वाद के साथ खाई जाती है। कच्ची ककड़ी के साथ नमक और कालीमिच का उपयोग करने में और भी अधिक उपयोगिता उत्पन्न हो जाती है। इसके सिवा, ककड़ी की तरकारी तथा उसका रायता भी बनाया जाता है, जो खाने में मधुर और रुचिपूर्ण होता है।

खीरा

शाक-फलों में ककड़ी की भाँति यह एक दूसरा फल है, खीरा, चीरा और बालमखीरा आदि इसके कई एक नाम हैं। अपनी ऋतु में यह बहुत अधिक पैदा होता है और ककड़ी की भाँति उपयोग में लाया जाता है।

गुण—

ताज़ा खीरा—हलका और खाने में स्वादिष्ट होता है। इस की प्रकृति शीतल होती है। तृषा को यह दूर करता है। दाह को मिटाता है और रक्त-पित्त को दूर करता है।

पका हुआ खीरा—किञ्चित खट्टा होता है, कुछ गर्म होता है और पित्त को बढ़ाता है। कफ और बात का नाश करता है।

खीरा—साधारणतया खीरा खाने में मधुर होता है प्रकृति में शीतल और रुचिकारक होता है। इसके खाने से मूत्र अधिक आता है। भ्रम और पित्त को शान्त करता है। दाह और वेदना को मिटाता है और वमन दूर करता है।

उपयोग—

कच्चा और पका, दोनों प्रकार का खीरा खाया जाता है, ककड़ी की भाँति बिना पकाये हुए खीरा भी खाने के उपयोग आता है। नमक और कालीमिर्च के साथ खीरा खाने से अधिक रुचिकारक हो जाने के साथ-साथ, वह निर्दोष हो जाता है।

कच्चा खीरा खाने में उसका छिलका निकालने की आवश्यकता नहीं होती। वह स्वयं मुलायम होता है, परन्तु पका हुआ खीरा खाने के पहिले उसका छिलका निकाल डाला जाता है, इसलिए कि वह कठोर हो जाता है। कच्चे खीरे का रंग बिलकुल हरा और पक जाने पर उसका रंग मटमैला हो जाता है। इसकी तरकारी भी बनाई जाती है किन्तु बिना पकाये हुए ही यह अधिक खाया जाता है।

खरबूज़ा

यह खेतों में बोया जाता है। खरबूज़ा जब कच्चा होता है तो उसका रंग हरा होता है, पक जाने पर उसका छिलका बड़ा सुहावना और मटमैला हो जाता है। पके हुए खरबूजे की सुगन्ध बड़ी अच्छी होती है। खाने में रुचिकारक होता है।

गुण—

खरबूज़ा—बल को बढ़ाता है। मूत्र अधिक लाता है। कोठे को शुद्ध करता है। प्रकृति में शीतल और वीर्य को बढ़ाने वाला होता है। पित्त और बात को नष्ट करता है। मूत्रकृच्छ् रोग को उत्पन्न करता है।

कच्चा खरबूज़ा—खाने में कडुआ और कुछ मधुर होता है। स्वाद में किसी प्रकार खट्टा होता है।

पका खरबूज़ा—अमृत के समान स्वादिष्ट होता है। खाने से तृप्ति होती है। शरीर को पुष्ट करता है। दाह को दूर करता है। श्रम को मिटाता है। मूत्र की वृद्धि करता है। पित्त और उन्माद का नाश करता है। कफ़ को उत्तेजित करता है और वीर्य को बढ़ाता है।

भली भाँति पका हुआ खरबूज़ा—स्वास्थ्य को बढ़ाता है शरीर को पुष्ट करता है। बल को बढ़ाता है। खाने में स्वादिष्ट होता है। प्रकृति में शीतल और भारी होता है। पित्त और बात को शान्त करता है। स्निग्ध और उदर के रोगों को मिटाता है। इसकी सुगन्धि बड़ी मनोहर होती है।

तरबूज़

तरबूज़ के खेत प्रायः नदी के किनारे और रेतीली मिट्टी में होते हैं। तरबूज़ दो प्रकार का होता है, एक काले बीजों का होता है और दूसरा लाल बीजों का। जिन तरबूज़ों के बीज काले होते हैं, उनका गूदा, गुलाबी और पीले रङ्ग का होता है। जिनके बीज लाल होते हैं उनका गूदा, लाल, गुलाबी और पीले आदि सभी रङ्ग का होता है।

हमारे देश में पौष और माघ के दिनों में तरबूज़ बोया जाता है। फागुन और चैत में उसमें फूल आते हैं और बैसाख में उसका फल फलता तथा बढ़ता है, जेठ में पक कर वह खाने के योग्य हो जाता है। किसी-किसी देश में तरबूज़ प्रत्येक ऋतु में पैदा होते हैं और वे इतने बड़े होते हैं कि उनकी तौल एक-एक मन तक की होते हैं।

गुण--

कच्चा तरबूज़—मल को रोकता है। पित्त और शुक्र को मिटाता है। इसकी प्रकृति शीतल और भारी होती है। बल को बढ़ाता है, मधुर और तृप्तिकारक होता है। शरीर को पुष्ट करता है। कफ को उत्तेजित करता है और नेत्रों को हानि पहुँचाता है।

पक्का तरबूज़—गर्म और क्षारयुक्त होता है। पित्त को बढ़ाता है, कफ और बात का नाश करता है। खाने में स्वादिष्ट तथा मीठा होता है।

तरबूज़—साधारणतया मधुर और शीतल होता है, पित्त का नाश करता है, दाह का निवारण करता है।

तोरई

तोरई अधिकतर तरकारी के काम आती है। इसकी कई एक क़िस्मे होती हैं। तोरई, घियातोरई, मीठी तोरई और कडुवी तोरई आदि। घियातोरई को नेनुवा भी कहते हैं।

गुण—

तोरई—स्निग्ध और मधुर होती है। कफ़ और पित्त का नाश करती है। कोई-कोई तोरई किञ्चित बादी होती है। खाने में पथ्य और रुचिकारक होती है। इससे बल बढ़ता है और वीर्य की वृद्धि होती है।

तोरई—प्रकृति में शीतल किन्तु मधुर होती है। किञ्चित कफ़ पैदा करती है। कुछ बादी होती है। पित्त का नाश करती है। खाने में पाचक होती है। खाँसी को फ़ायदा करती है। ज्वर में उपयोगी होती है, कृमि का नाश करती है।

घियातोरई—स्निग्ध और सारक होती है। पित्त को शान्त करती है, बात को मिटाती है। रक्त-पित्त को दूर करती है।

घियातोरई—खाने में मधुर और स्निग्ध होती है। बात को बढ़ाती है और वृष्य होती है। कृमि उत्पन्न करती है। घाव को भरती है।

कडुवी तोरई—इसको कहीं-कहीं पर जंगली तोरई भी कहा जाता है। यह भेदक और कडुवी होती है। इसकी प्रकृति तीक्ष्ण और शीतल है। खाने में स्निग्ध होती है। हृदय को लाभ पहुँचाती है। अग्नि को तेज़ करती है। खाँसी को फ़ायदा करती है। अरुचि को मिटाती है। प्रमेह की बीमारी में उपयोगी है।

परवल

परवल की बेल होती है, उसीमें इसके फल लगते हैं। हरे और कच्चे परवल नीले रंग के होते हैं। पकने पर वे लाल हो जाते हैं। इसकी बेल प्रायः जंगलों में अधिक पैदा होती है। इसकी दो क़िस्में होती हैं, एक मीठा परवल होता है और दूसरा कड़ुवा।

गुण—

परवल—खाने में अत्यन्त पाचक होता है। हृदय को हितकारी है। हलका और वृष्य होता है। अग्नि को उद्दीप्त करता है। किंचित गर्म और स्निग्ध होता है। खाँसी दूर करता है। हैं। रुधिर के विकारों को मिटाता है। ज्वर में लाभ करता है। त्रिदोष का संहार करता है और कृमि का नाश करता है।

परवल—खाने से बल की वृद्धि होती है। यह खाने में स्वादिष्ट होता है। मल को साफ़ करता है पथ्य, पाचक और रुचिकारक होता है। शरीर को पुष्ट करता है। बात को शान्त करता है, पित्त का दमन करता है। ज्वर को मिटाता है। शोष और त्रिदोष का नाश करता है।

कड़ुवे परवल—खाने में कड़ुवे और तिक्त होते हैं। इनकी प्रकृति कुछ उष्ण और दस्तावर भी होती है। पित्त को दूर करने में उपयोगी होते हैं। कफ़ और कण्डू को मिटाते हैं। कुष्ठ तथा रुधिर के विकारों को शान्त करते हैं। ज्वर में फायदा करते हैं। दाह को मिटाते हैं। नेत्र-रोग में लाभकारी हैं। विष को शान्त करते हैं।

बैंगन

करेला की भाँति इसका पेड़ भी छोटा-सा होता है। इसको कुछ लोग बैंगन और कुछ लोग भाँटा तथा भंटा कहते हैं। इसकी तरकारी बनती है। कुछ लोग इसे कच्चा भी खाते हैं।

गुण—

बैंगन—कटु किन्तु रुचिकारक होता है। खाने में मधुर है। पित्त का नाश करता है। बल को बढ़ाता है। शरीर को पुष्ट करता है। हृदय को लाभ पहुँचाता है। बात प्रकृति वालों के लिए बहुत हानिकारक है।

बैंगन—नींद लाता है, प्रीतिकारक होता है। खाने में भारी और बादी होता है। खाँसी के विकार उत्पन्न करता है। कफ़ को बढ़ाता है। अरुचि उत्पन्न करता है। मल को रोकता है।

लम्बा बैंगन—अग्निवर्द्धक होता है। शुक्र उत्पन्न करता है। रक्त को बढ़ाता है। हृल्लास, खाँसी और अरुचि के लिए विशेष हानिकारक न होते हुए भी किसी प्रकार अपाचक होता है।

कच्चा बैंगन—कफ़ और पित्त का नाश करता है।

पक्का बैंगन—क्षारयुक्त और पित्तल होता है।

मध्यम अवस्था का बैंगन—त्रिदोष नाशक होता है। रक्त-पित्त को शुद्ध करता है।

बैंगन का भरता—किञ्चित पित्तकारक होता है। कफ़, मेद और बात का नाश करता है। सारक और लघुतर होता है।

उपयोग—

बैंगन की तरकारी, उसका भरता, उसकी कलौंजी और पकौड़ी आदि अनेक प्रकार की खाने की चीज़ें बनाई जाती हैं किन्तु बैंगन बादी और अपाचक होने के कारण निर्बल तथा रोगी आदमियों को हानि पहुँचाता है।

सिंघाड़ा

सिंघाड़े की बेल बड़े-बड़े तालाबों में हुआ करती है। इसका फल तिकोनाकार होता है। सिंघाड़े के ऊपर उसके छिलके के तीन बड़े-बड़े काँटे होते हैं। सिंघाड़ा हमारे देश में बहुत पैदा होता है।

गुण—

सिंघाड़ा—प्रकृति में अत्यन्त शीतल और खाने में स्वादिष्ट होता है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। यह कषेला और मल रोधक होता है। शुक्र को बढ़ाता है, बात की वृद्धि करता है। कफ़ को उत्तेजित करता है। रक्त-पित्त और दाह को शान्त करता है।

सिंघाड़ा—खाने में हलका और वृष्यतम होता है। त्रिदोष को नाश करता है। ताप का निवारण करता है। श्रम को नाश करता है। रुचि को बढ़ाता है। पुरुषेन्द्रिय को दृढ़ करता है।

सिंघाड़ा—बात और कफ़ को बढ़ाता है। कषेला, मधुर और शीतल होता है। खाने से तृप्ति होती है। पित्त का नाश करता है। खाने में स्वादिष्ट होता है। दाह को शान्त करता है। त्रिदोष को मिटाता है। प्रमेह को लाभ करता है। रुधिर के विकारों को शुद्ध करता है। भ्रम, सूजन और सन्ताप को मिटाता है।

उपयोग—

सिंघाड़े के आग में पानी के साथ पका कर खाया जाता है। पक जाने पर उसका स्वाद सुन्दर और सोंधा हो जाता है।

मूली

मूली के पेड़ के दो हिस्से होते हैं, जड़ और पेड़ी। उसकी जड़, ज़मीन में होती है और मूली के पेड़ का शेष हिस्सा ऊपर होता है। उसकी जड़ ही मूली कहलाती है। इसकी जड़ अर्थात् मूली और पत्तियाँ अर्थात् डालियाँ, दोनों ही खाने और तरकारी के काम आती हैं।

गुण—

मूली—प्रकृति में तीक्ष्ण और कटुष्ण होती है। अग्नि को उद्दीप्त करती है। बवासीर की बीमारी में विशेष उपयोगी है। गुल्म और हृदय के रोग को लाभ पहुँचाती है। बात का नाश करती है। खाने में रुचिकारक और भारी होती है।

बड़ी मूली—किञ्चित् गर्म और चर्चरी होती है। खाने में स्वादिष्ट किन्तु कडुवी होती है। कफ और बात का नाश करती है। कृमि का संहार करती है, ग्राही और भारी होती है। प्रकृति में रूखी और त्रिदोष उत्पन्न करती है किन्तु उसी मूली को तेल में सिद्ध कर लेने से त्रिदोष का नाश करने वाली हो जाती है।

छोटी मूली—खाने में रुचिकारक होती है। हल्की और पाचक होती है। त्रिदोष का नाश करती है, स्वर और शुद्ध करती है। ज्वर और श्वास की बीमारी में फायदा करती है। नासिका के रोगों और कण्ठ की बीमारियों में उपयोगी होती है। नेत्र की बीमारी में लाभ करती है।

कच्ची मूली—भारी और विष्टम्भकारी होती है, खाने में तीक्ष्ण और त्रिदोष उत्पन्न करती है किन्तु इसी को घृत में पका लेने से बात का नाश करती है, पित्त का दमन करती है। कफ को बढ़ाती है।

सूखी मूली—त्रिदोष का नाश करती है। शोथ का निवारण करती है। विष का नाश करती है। हल्की और पाचक होती है।

सब प्रकार की मूली—मूली साधारणतया, कड़ुवी और चरपरी होती है। किञ्चित् गर्म और रुचिकारक होती है। खाने में हल्की तथा पाचक होती है। अग्नि को तेज़ करती है। हृदय को लाभ पहुँचाती है। प्रकृति में मधुर और सारक होती है। शरीर में बल पैदा करती है। मूत्रदोष, बवासीर की बीमारी में फायदा करती है, गुल्म, क्षय, श्वास, खाँसी को दूर करती है। नेत्र के रोगों को मिटाती है। नाभि की पीड़ा को नाश करती है। कफ़, वात को शान्त करती है। कण्ठ के रोगों में औषधि का काम करती है। दाह, शूल और पीनस के रोगों को मिटाती है।

पुरानी मूली—वीर्य के लिए अहितकारी है, शोष और दाह पैदा करती है, पित्त को बढ़ाती है और रुधिर के विकारों को उत्पन्न करती है।

उपयोग—

स्वाद और लाभ की दृष्टि से मूली बहुत उपयोगी शाकफल है। कच्ची मूली से लेकर पक्की तक अनेक प्रकार से उसे खाया जाता है। कितनी ही तरह की उसकी तरकारी बनाई जाती है जो स्वादिष्ट, खाने में दोष-रहित और लाभकारी होती है।

मूली की पकौड़ियाँ बनाई जाती हैं जो विशेष प्रकार के स्वाद का परिचय देती हैं। इसके परेठे भी बनते हैं।

गाजर

गाजर, जंगली गाजर और गोल मूली आदि इसके कई एक नाम हैं। हमारे देश में गाजर की खेती होती है और बहुत-सी गाजर पैदा होती है। अनाज की भांति इसको खाकर तृप्ति होती है। जो लोग इसकी खेती करते हैं, वे इसको कच्ची और पक्की पेट भर-भरकर खाते हैं।

गाजर दो प्रकार की होती है। छोटी और बड़ी। छोटी गाजर जो शहरों में बिका करती है, खाने में अधिक स्वादिष्ट और मीठी होती है। बड़ी गाजर छोटी गाजर की अपेक्षा कम मीठी होती है। गाजर को छोटे और बड़े सभी लोग बड़े चाव से खाते हैं।

गुण—

गाजर—खाने में मधुर और तीक्ष्ण होती है। किंचित् गर्म होती है। अग्नि को तेज़ करती है, मल को रोकती है। रक्त पित्त में लाभ करती है। बवासीर का नाश करती है। कफ़ और बात को दूर करती है। संग्रहणी में फ़ायदा करती है।

गाजर खाने में मधुर और रुचिकारक होती है। कफ़ का नाश करती है। शूल में फ़ायदा करती है। दाह को मिटाती है। पित्त और तृषा को शान्त करती है।

गाजर—खाने में चरपरी और हृदय को हितकारी है। दुर्गन्ध का नाश करती है और गुल्म में फ़ायदा करती है। अग्नि को बढ़ाती है। खाने में स्वादिष्ट होती है।

उपयोग—

गाजर कच्ची और पक्की तो खाई ही जाती है, उसका मुरब्बा और अचार भी बनाया जाता है जो खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट और लाभकारी होता है।

शक्कर और दूध तथा घी के साथ गाजर का हलुवा बनता है। जिसके खाने से शरीर में बल की वृद्धि होती है रक्त बढ़ता है और मुख पर कान्ति पैदा होती है। जो लोग गाजर की खेती करते हैं वे लोग गाजर को उबालकर गायों भैंसों और बैलों को खिलाते हैं जिससे वे ख़ूब तगड़े और बलवान हो जाते हैं।

शकरकंद

शकरकन्द, रतालू, पिण्डालू और काँदू आदि इसके कई एक नाम हैं। गाजर की भांति इसकी भी खेती होती है। और ज़मीन के भीतर मिट्टी में पैदा होती है।

गुण—

शकरकन्द—खाने में मीठी और मधुर होती है। श्रम का नाश करती है। पित्त को शान्त करती है। दाह का निवारण करती है। शरीर में बल उत्पन्न करती है। बदन को पुष्ट करती है। यह वृष्य और भारी होती है।

शकरकन्द—इसकी प्रकृति शीतल होती है मूत्रकृच्छ रोग का नाश करती है। जलन को शान्त करती है। प्रमेह में फ़ायदा करती है। इसके खाने से वीर्य की वृद्धि होती है। क्षुधा की तृप्ति होती है। शकरकन्द, शोषनाशक और भारी होती है। इससे कफ़ की वृद्धि होती है और बात कुपित होता है।

शकरकन्द कच्ची और पक्की दोनों तरह से खाई जाती है। कच्ची शकरकन्द खाने में कठोर होती है उसके गूदे में दूध का-सा अंश होता है। छोटे-छोटे लड़के और लड़कियाँ पेट-भर कर कच्ची शकरकन्द खाती हैं।